चित्र
आदिशंकर
रा. गणपति

चित्र
आदिशंकर
चित्र
विनु
PRICE : Rs.

समर्पण
श्री कांचि कामकोठि
पीठाधिपति श्री जगतगुरु
श्री चंद्रशेखरेद्रं सरस्वती
शंकराचार्य स्वामी जी के
शताभिषेक के स्मरण में यह
रचना सर्मापित की जाती है

कांचि कामकोठि पीठ श्री जयेंद्र स्वामी जी का आशीर्वाद

इस संसार में कई देश हैं। इनमें हमारा भारत बहुत पुराना और पवित्र देश है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में ही कई पवित्र पुण्य नदियाँ, भगवान के कई अवतार स्थल और पुण्य क्षेत्र बने हुए हैं। कई महान और ज्ञानी पैदा हुए हैं।

इस क्रम में आदिशंकर मुख्य स्थान में रहते हुए, संसार के पथप्रदर्शक, ज्ञानगुरु आचार्य, कैलास में रहनेवाले परमशिव के अवतार के रूप में दीखते हैं।

इनके दिये हुए तत्वोपदेश, विग्रह आराधना के लिए की हुई सेवाएं, बच्चों से लेकर पंडितों तक पढने लायक रची हुई पुस्तकें आदि बहुत प्रशंसनीय हैं।

जिन्होने इस संसार में मनुष्य जन्म लिया है उन सबका यही लक्ष्य होना चाहिए कि वे इस महान के जीवन चरित्र को खूब पढे, उनके अच्छे उपदेशों का पालन करे और इक–पर जीवन में परमानन्द को पावे।

हम उन सबको अपना हार्दिक आशीर्वाद देते हैं जो इस अद्भुत रचना को खरीदकर पढते हैं और भले होते हैं

श्री गुरुभ्यो नमः

महागणपतये नमः

इस संसार में एक ही परमात्मा सृष्टि, स्थिति संहार आदि कामों के लिए ब्रह्म विष्णु और शिव के रूप में प्रकट होते हैं। हर एक युग में लोक हित के कारण विष्णु का अवतार होता है। उन्होंने पहले ही संकल्प किया है कि जब धर्म का शैथिल्य होता जा रहा है और अधर्म का उत्थान होता है तब मेरा अवतार होगा।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

ब्रह्माजी अवतार नहीं लेते। विष्णु की तरह शिवजी का भी अवतार नहीं होते। किंतु जब शिवजी के अवतार की जरूरत पडती है तब वे अवतरित होते हैं।

'शङ्कराचार्य' उनका अवतार था। लोगों को ज्ञान का उपदेश देने के लिए अवतार करना पडा। कराल कलियुग में दुःखमग्न लोगों का उद्धार करना अपना कर्तव्य समझकर कैलासवासी शङ्कर शङ्कराचार्य के रूप में संसार में प्रकट हुए।

हर युग में शिवजी का अवतार नहीं होता। कलियुग में शिवजी का अंश ही शङ्करजी के नाम से ज्ञान का उपदेश देने के लिए धरती पर अवतरित हुआ।

शिवजी जब ज्ञानोपदेशक रहे तब दक्षिणामूर्ति के नाम से मशहूर हुए। उनका उपदेश भाषा के रूप में नहीं किंतु केवल चिन्मुद्रा के द्वारा ही हुआ। बडे बडे ज्ञानवृद्ध ऋषि-मुनि लोग उस चिन्मुद्रा के द्वारा ही अपने सन्देहों को दूरकर चुके।

लगभग दो हज़ार पाँच सौ साल के पहले संसार की हालत ऐसी थी कि ज्ञानमार्ग का प्रचार कम होकर निरीश्वरवाद उन्नत दिशा में पहुंच गया। उस समय सभी देवगण और ऋषिगण कैलास जाकर दक्षिणामूर्ति के रूप में रहते शिवजी के सामने धरती की हालत प्रकट की और मनुष्य सामान्य को ज्ञान और बुद्धि देने की प्रार्थना की। दयालु दक्षिणामूर्ति ने उनकी प्रार्थना के अनुसार धरती पर अवतार लेना स्वीकृत किया। उनकी सहायता के लिए ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं ने भी भूलोक में जन्म लेना स्वीकार किया। यह सुनकर देवगण ऋषिगण दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इस अवसर पर ही भारत वर्ष के सुहाक्ने केरल प्रान्त के कालाडी नामक गांव में एक छोटी सी घटना घटी।

कालडी में शिवगुरु नामक एक बडे ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम आर्याम्बा था। दोनों हमेशा शिवजी की पूजा करने और दीन दुःखियों को दान देने में ही लगे रहे। वे दोनों बहुत बडे सज्जन थे। फिर भी उनको एक कमी थी कि सन्तान का अभाव था।

वृषाचल क्षेत्र (तिरुच्चूर) में अड़तालीस दिन तक शिवजी का ध्यान हृदय पूर्वक करते थे। तिरुच्चूर में वे दोनों दिन में छे बार शिवजी की उपासना करते थे। वहाँ शिवजी का नाम वटक्कुनाथन है। उनको घी का अभिषेक करना वहां की प्रथा है। घी से ढकी मूर्ति को देखने पर कैलास में बैठे शिवजी के समान दीखते थे। घी का प्रसाद पाकर लोग रोग से मुक्त होते है। शिवगुरु दम्पति की हार्दिक भक्ति देखकर वटक्कुनाथेश्वर का दिल घी के समान पिघल गया और उनकी परीक्षा करके वरदान देने का भी निश्चय किया।

शिवजी दोनों के स्वप्न में आये और कहा कि आपकी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, आपके इच्छानुसार पुत्र का वरदान देता हूँ। लेकिन यह शर्त है कि चिरञ्जीवि मूर्ख कई पुत्र चाहिए या अल्पायु और बुद्धिमान एक ही बालक चाहिए। इन दोनों में से आप के इच्छानुसार एक ही वरदान मिलेगा।

भक्ति में डूबे वे दम्पति यों बोले कि हम अच्छे और बुरे को चुनने में असमर्थ है। आप जिसे हमारा भला समझते है उसी को वरदान के रूप में दें।

यह सुनकर शिवजी बोले, "अहा! परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। संसार भर को भला पहुंचाने के लिए मैं ही एक बुद्धिमान पुत्र के रूप में अवतार लेनेवाला हूँ।" यह कहकर वे तिरोहित हुए।

वे दम्पती इस घटना से बहुत प्रसन्न हुए। वटमूल में रहनेवाले दक्षिणामूर्ति ही वटक्कुनाथन बनकर आर्याम्बा के गर्भ में ज्योति रूप में प्रविष्ट हुए। वे दम्पती कालडी लौट आये।
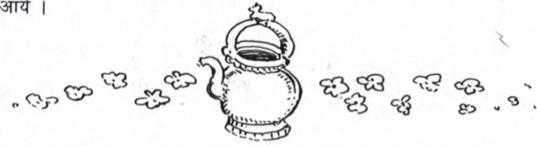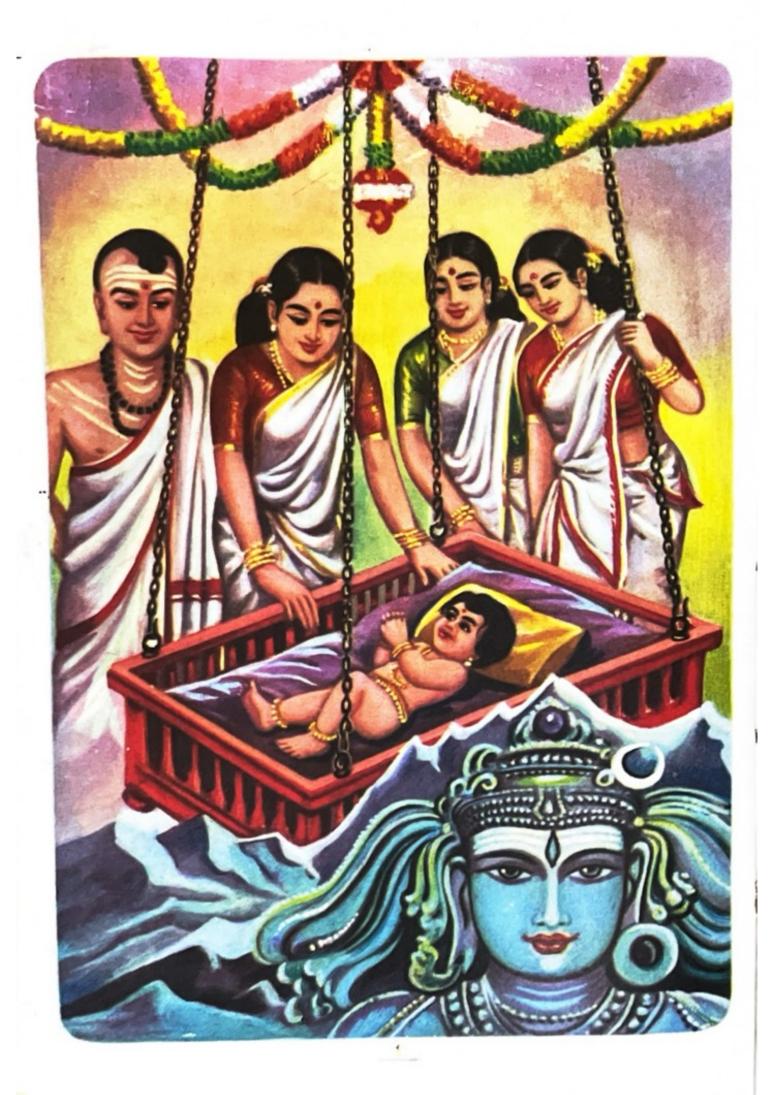
दस महीने के बाद वैशाख शुक्ल पंञ्चमी के दिन आर्द्रानक्षत्र में शङ्कराचार्य का अवतार आर्याम्बा के गर्भ से हुआ। लोगों की भलाई करनेवाला यह बालक है। इस अर्थ को बताने के लिए ही उनका नाम शङ्कर रखा गया। शं का अर्थ है सुख, कर का अर्थ है करनेवाला।

बालक तेजस्वी था। उसे देखने वाले सभी दिव्य बालक ही समझकर उनका बडप्पन मानते थे। लोग यह देखकर विस्मित हुए कि उनके हाथ और पैरों में शिवजी के ही हिरण, परशु, शूल, कपाल आदि के चिह्न थे। जन्म के समय हवन कुण्ड की अग्नि प्रदक्षिण से जलती थी। नास्तिकों के हाथ से ग्रन्थ अपने आप नीचे गिर गये। इन चिह्नों से महान लोग समझ गये कि कहीं एक महान-साधु का अवतार हुआ है। बालक शङ्कर बुद्धि और गुण दोनों में बहुत उज्जवल था। उनका स्नेह सब को आकर्षित करता था। जब तीन साल का था तब अक्षराभ्यास किया गया। उस दिन से विद्याभ्यास शुरू हुआ। बहुत जल्दी ही बडेबडे शास्त्रग्रन्थों को खुद ही पढकर अपने मन में विषयों को धारण कर लेते थे। उनके भाव को भी साफ़ साफ़ समझ गये थे। जब चार साल का था तब यह दुःखद घटना हुई कि उनके पिता जी स्वर्ग सिधारे। धीरे धीरे माता और बालक उस दुःख को भूलने लगे। जब शङ्कर पांच साल का हुआ तब उनका उपनयन किया गया।
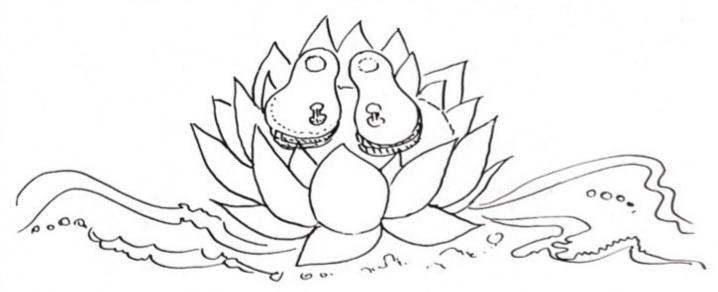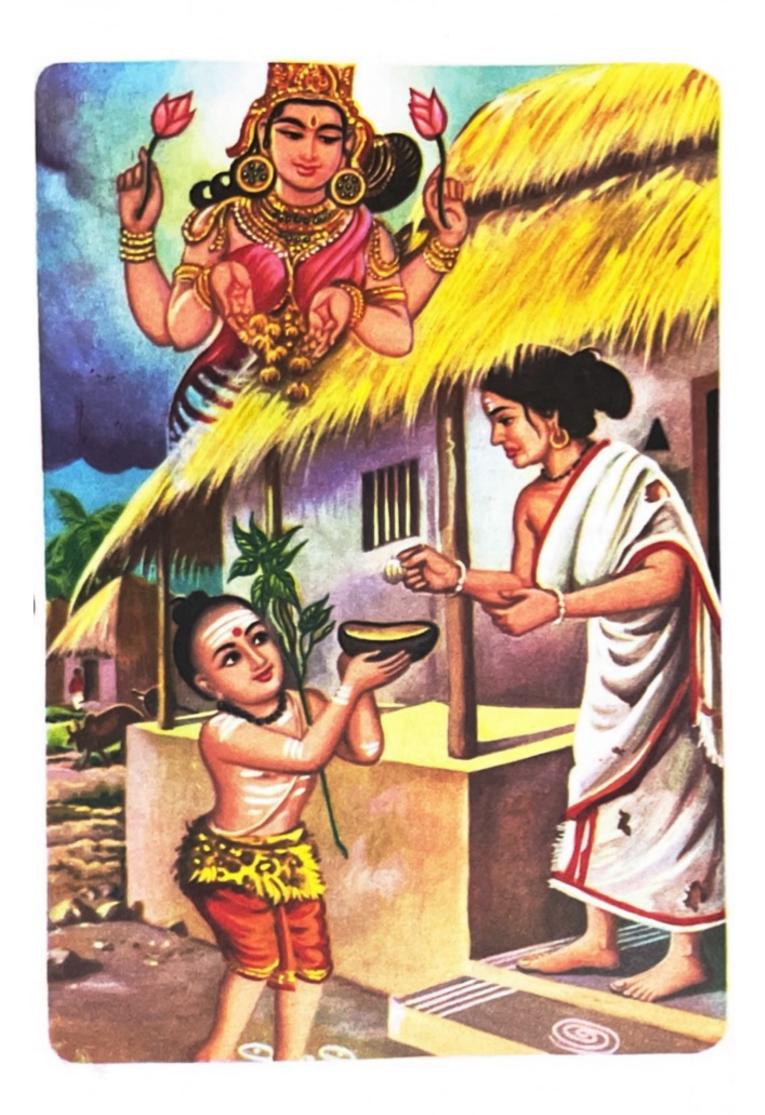
उपनयन के बाद बह्मचर्याश्रम में रहकर गुरुकुल में ही वेद वेदांग और शास्त्रों का अभ्यास किया । इस तरह उनका गुरुकुलवास चलता रहा ।

ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि भिक्षा मांगकर गुरु के आदेश से भोजन करना है। बाल शंकर भी उस नियम का पूरा पालन करता था ।

एक दिन बालक शंकर एक गरीब के घर गया । वह द्वादशी का दिन था । उस घर में खाने पीने का कुछ भी नहीं था । वहाँ ईश्वर को निवेदन करने के लिए एक आभलक फल ही था । कार्तिकेय जैसे छोटे बालक शंकर को देखकर घरवाली की आंखों से आंसू बहने लगे और मन ही मन बहुत दुःखित हुई कि मैं इतनी गरीबिन हूं इस दिव्य बालक को भिक्षा देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है । यह सोचकर गृहिणी ने आँवले का फल लाकर भिक्षा पात्र में रखा । यह देखकर दयालु बालक शंकर का दिल पिघल गया । तुरंत ही उसकी गरीबी दूर करने के लिए लक्ष्मी की स्तुति की । उसी समय उस घर के आंगन में सोने के अमले के फल की वर्षा हुई । इस तरह लक्ष्मी ने उस के दारिद्रय को हटा दिया (सिर्फ भिक्षा में दिये एक आँवले के फल के बदले) । इसीलिए इसका नाम 'कनक धारा स्तोत्र' पडा ।
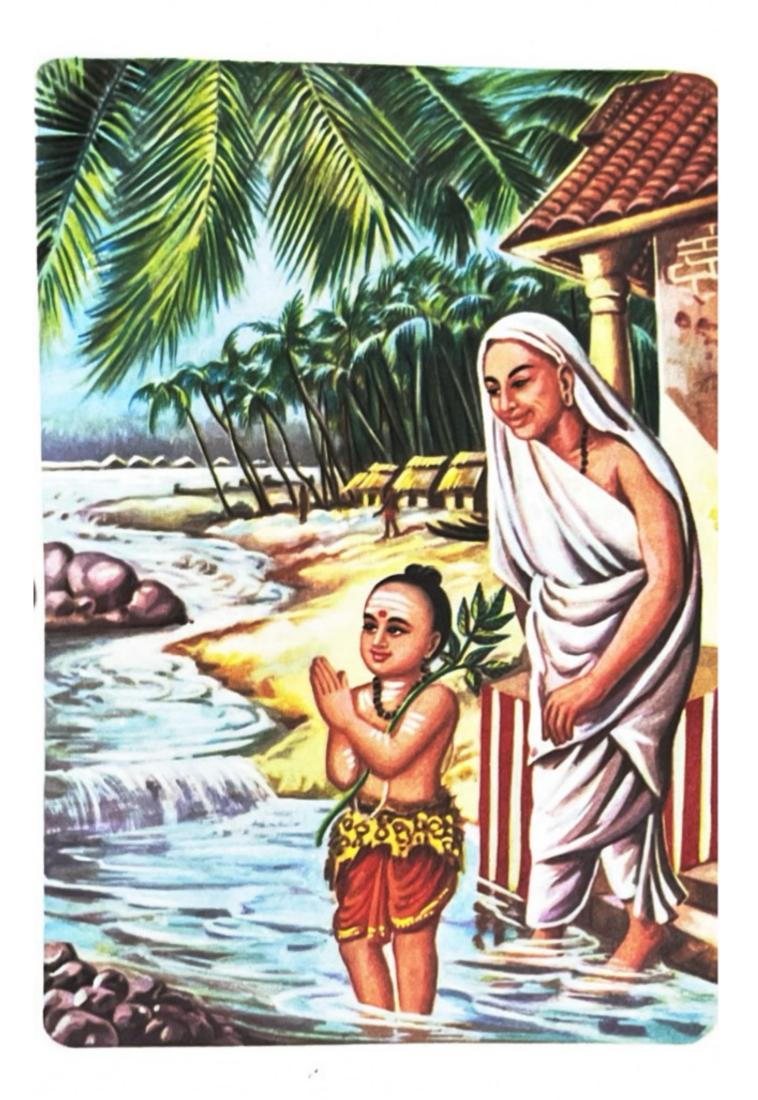
बालक शंकर अद्वतीय बुद्धिमान था। तीन ही साल में सभी ग्रन्थों को पढकर वेद, शास्त्र काव्य आदि सभी विषयों में प्रवीण हुआ । तब उसकी उम्र आठ बरस की थी । गुरुकुलवास के बाद बालक शंकर घर लौट आया और मां की सेवा में लगा रहा ।

आर्याम्बा रोज पूर्णा नदी में नहा करती थी । जब बीमार पडी तब वह स्नान के लिए नहीं जा सकी । नदी में स्नान न करने से वह बहुत दुखित हुई । मां का दुःख समझ कर शंकर ने पूर्णा नदी से प्रर्थाना की कि वह घर की ओर से अपने प्रवाह को मोडकर बह जाय । नदी ने प्रार्थना सुनी । वैसा ही किया । नदी अब शंकर के घर के पिछवाडे से होकर बहने लगी । इससे मां को बहुत आनंद हुआा ।

एक दिन सप्त ऋषियों ने शंकर के सामने उपस्थित होकर कहा – देश में नास्तिकवाद मजबूत बन गया । उसे दूर करके आस्तिकता की प्रतिष्ठा के लिए आपका अवतार हुआ । अब तो आठ साल पूरा हो गये । हम सिर्फ इस बात की याद दिलाते हैं । ऋषियों को बिदा देकर शंकरजी ने सोचा कि अच्छा ! सन्यास लेकर सारे देश में घूम घूम कर उपदेश देने से ही यह काम पूरा होगा । इसीलिए सन्यास ग्रहण करने के मौके की तैयारी करूंगा ।
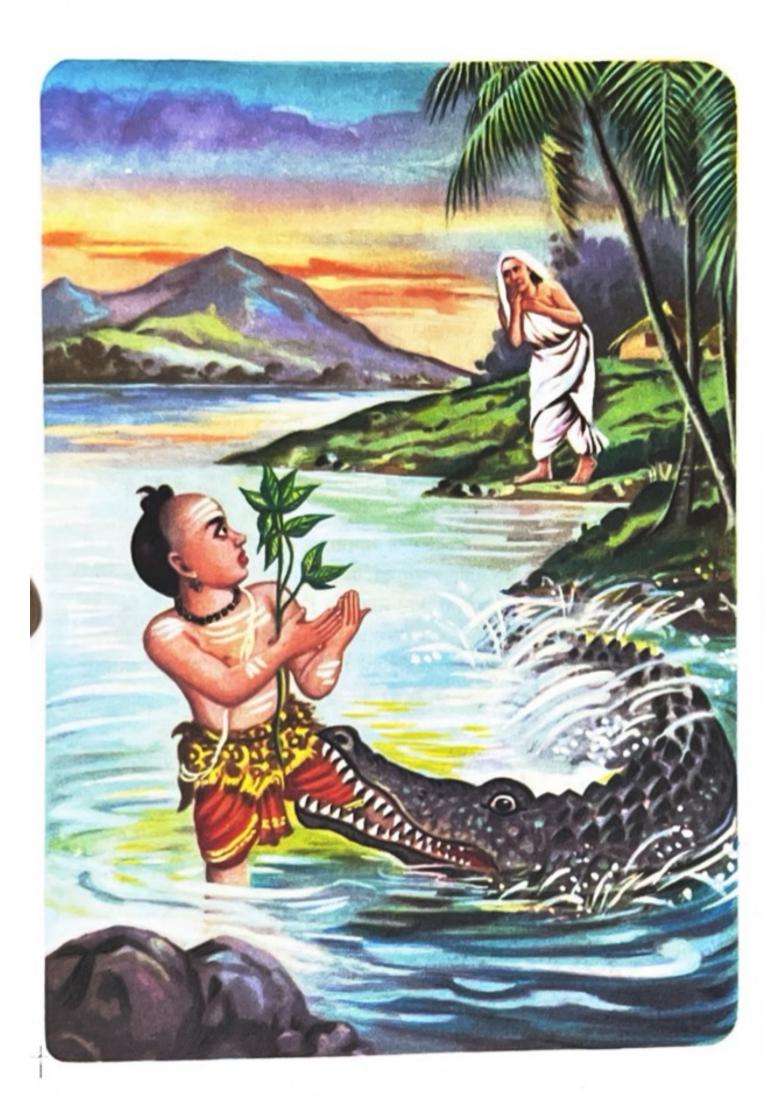
एक दिन पूर्णा नदी में स्नान करने के लिए गया तो एक मगर ने उसका पैर पकड लिया। तब बालक ने माँ,माँ कहकर शोर मचाया। शोर को सुनकर आर्याम्बा वहां आयी और बालक को मगर से पकडे देखकर घडबडाने लगी। फिर सोचा कि कैसे इसे मुक्ति दिला दूं। मगर की पकड से उसको छुडाने में अपने को असमर्थ पाकर पछताने लगी। तब शंकर ने माँ को एक उपाय बताया कि इस जन्म में मगर से मेरा अन्त होने की विधि है। लेकिन अगर मैं सन्यास ले लूं और घर-बार का सब नाता छोड दूं तो उसे दूसरा जन्म मानकर मगर मुझे छोड देगा। इसीलिए आपसे यह प्रार्थना करूंगा कि मुझे सन्यास लेने की अनुमति दें। यह घटना शंकर की सृष्टि है। लेकिन आर्याम्बा को यह मालूम नहीं है। इसलिए अपने प्यारे पुत्र को सजीव देखने के लिए विवश होकर सन्यास लेने की अनुमति दी। बालक शंकर ने माँ की हालत देखकर कहा कि हे माँ! सब नाता छोडकर सन्यासी बनूं तो भी आपके प्राण वियोग के समय मैं उपस्थित हो जाऊँगा। खुद ही आपके अन्त्येष्टि-क्रिया-कर्म करके पुत्र शब्द को सार्थक बनाऊँगा।

जब सन्यास लेने का संकल्प किया तब मगर उसे छोडकर चला गया। उस अवसर पर माँ ने घर आने को बुलाया। लेकिन शंकर ने यह न मानकर कहा संसार में सभी माताएँ मेरी माँ हैं सभी पुरुष मेरे भाई हैं। सभी स्त्रियाँ मेरी बहिनें हैं। सभी घर मेरे घर हैं – यह कहकर सन्यासाश्रम स्वीकार करने के लिए कालडि से रवाना हुए। शंकर अपनी जन्म भूमि कालडि छोडकर पैदल ही चलते रहे। पूर्णा नदी में ही आपत्सन्यास लेने से सन्यासी बन गये। फिर भी उत्तम सन्यासी का लक्षण वेदों में कहा गया है कि एक गुरु से ही आश्रम का स्वीकार करना है।

शंकर तो ऐसे गुरु कौन है और कहां जो उपदेश देने योग्य है आदि बात को जानते हुए भी गुरुजी की खोज में साधारण बालक जैसे पैदल चलते रहे और आखिर नर्मदा नदी के किनारे पहुंच गये ।

जब वे पहुंचे तब नर्मदा में बाढ बहती रही । भयंकर रूप में बहती नदी की बाढ को अपने कमण्डलु में समाया । नदी की बाढ को शान्त करके दोनों किनारों के बीच में ही बहने दिया । यह उनकी शक्ति की महिमा है । इस अद्भुत घटना को देखकर नर्मदा नदी के किनारे प्रतीक्षा करने वाले गोविन्द भगवतपाद जी ने शंकर का हार्दिक स्वागत किया । गुरु के आदेश से शिखा उपवीत आदि का विसर्जन करके काषायवस्त्र पहनकर गुरु के सामने उपस्थित हुए । तब गोविन्द भगवतपाद जी ने उनको सन्यास के तत्व का उपदेश दिया कि सारा संसार ईश्वर का रूप है। जीव और परमात्मा एक है।इस तत्व को बताने वाले वाक्यों को महावाक्य कहते हैं । इन महावाक्यों का उपदेश दिया गया ।
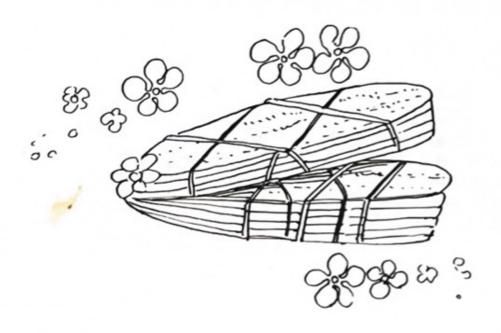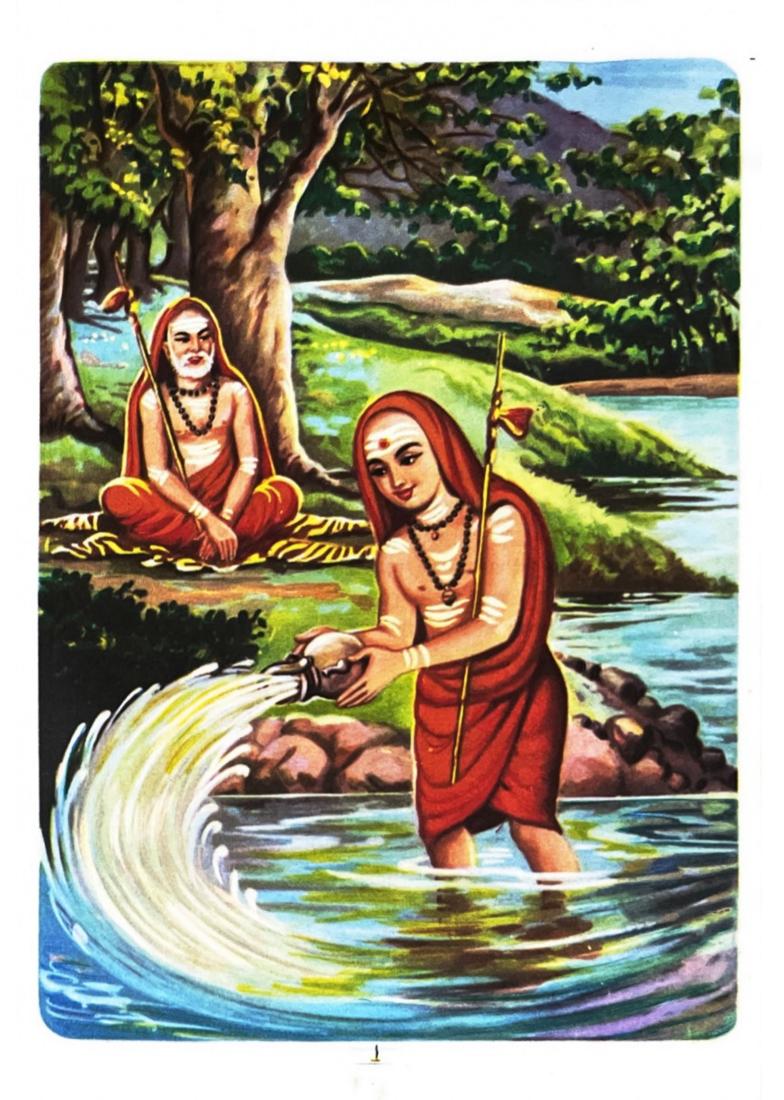
इस तरह शंकर जी वैदिक मार्ग से सन्यासश्रम स्वीकार कर चुके। शंकर जी तो दक्षिणामूर्ति के अवतार है और उन महावाक्यों का रहस्य भी अनुभवसिद्ध है फिर भी संसार में गुरु-शिष्य भाव के महत्व को दिखाने के लिए स्वयं गोविन्द भगवत पाद जी के शिष्य बने ।।

गोविन्द भगवत पाद जी ने गुरु दक्षिणा के रूप में शंकराचार्य से यह वचन ले लिए कि सारे संसार में अद्वैत तत्व का प्रचार किया जाय जिससे लोग सांसारिक बन्धन से मुक्ति पावे। उनकी आज्ञा के अनुसार शंकर जी अद्वैत तत्व के प्रचार करने के लिए गावों और शहरों में घूमने लगे। उधर गोविन्द भगवत पाद जी ध्यान में लगे रहने के लिए हिमालय पहाड की ओर चले गये।

भारत में असंख्य पुण्य क्षेत्रों में वाराणसी का स्थान पहला है। वहीं पर विभिन्न धर्मावलम्बी विद्वान भी रहा करते थे। अद्वैत के विरुद्ध वाद-विवाद करनेवाले भी वहीं पर थे। इसीलिए अद्वैत की प्रतिष्ठा के लिए वाराणसी को उचित समझकर पहले पहल वहां गये। पामर से लेकर पण्डितों तक सभी लोग उसे शंकराचार्यजी कहने लगे।इतना ही नहीं बल्कि उनका गहरा आत्मध्यान के कारण शंकर भगवतपाद नाम से विख्यात हुए। काशी क्षेत्र में गंगा के किनारे अद्वैत तत्व का प्रचार करने लगे। दूसरे धर्मावलम्बी भी इनके अद्वैत वाद के सामने खडा हो न पाये और शंकराचार्य के उपदेश से उनका अज्ञान दूर होकर उनके अनुयायी बने। अद्वैत तत्व के उपदेशों को स्थायीं रूप देने के लिए शंकराचार्य जी ने ग्रन्थ के रूप लिख रखा।

उनके रचे ग्रन्थों में बहुत मुख्य है व्यास के ब्रह्मसूत्र के भाष्य, दशोपनिषत् भाष्य, और गीता भाष्य।
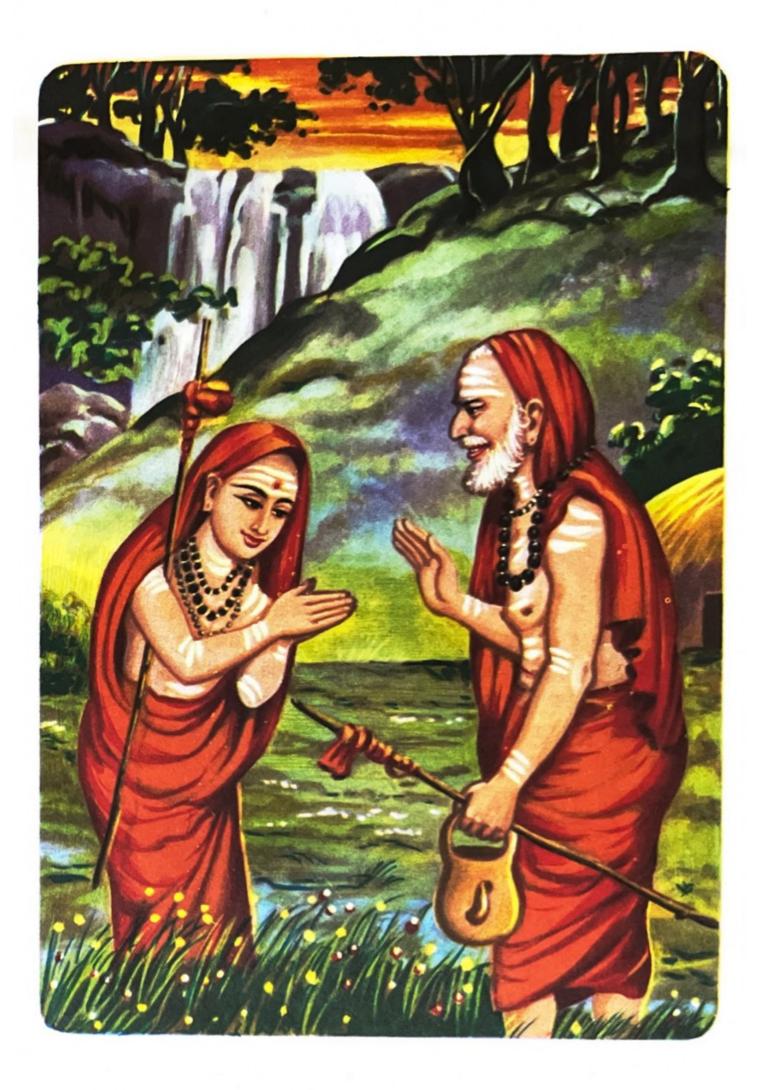
इन भाष्यों के सार को पामर लोगों को भी अच्छी तरह समझाने के लिए कई प्रकरण ग्रन्थ, जिनमें वेदान्त तत्व कूट कूटकर भरे हैं, रचाये गये । छोटे छोटे बच्चों के दिल में भक्तिभाव पैदा करने के लिए गणेश पञ्चरत्न आदि कई स्तोत्र रचाये। संसार भर के महान-आत्मज्ञानी लोग शंकराचार्य के इन ग्रन्थों की प्रशंसा करते रहते है । यह भारतीयों का विश्वास है कि काशी में जाकर गंगा में स्नान करना और विश्वानाथ जी,विशालाक्षी,अन्नपूर्णा जी आदि देवताओं के दर्शन करना बहुत पुण्य है । इसीलिए सभी लोग काशी आया करते थे । इसी तरह उत्तम आचार्य जी की खोज में भी लोग काशी आया करते थे । इसी तरह गुरु की खोज में युवा सनन्दन भी काशी गया । इनका जन्म स्थान शोषनाडू है । अनुपम शंकराचार्य जी को देखकर उसपर असीम भक्ति करके उनके शिष्य बन गये । यह युवा नरसिंह मूर्ति के बडे भक्त थे । इनकी भक्ति को लोगों को दिखाने के लिए श्री शंकराचार्य जी ने एक उपाय किया ।

एक दिन शंकराचार्य जी गंगा के किनारे बैठकर अद्वैत तत्व का उपदेश कर रहे थे । उस समय सनन्दन दूसरे किनारे आचार्य के कपडों को सुखा कर तहकर रहे थे । अचानक शंकर जी ने उच्च स्वर में कहा कि सनन्दन! मेरा कपडा भीग गया । तुरंत सूखा कपडा लेकर यहां आओ । आचार्य की आज्ञा पाकर सनन्दन अपने को भूल गये । जल्दबाज के कारण, गुरु की भक्ति में डूबकर सूखे कपडे लेकर सीधे (नाव की सहायता के बिना) गंगा प्रवाह में पैदल चलने लगे । तब एक आश्चर्य की बात हुई । गुरु की महिमा से जहाँ जहाँ वे पैर रखते चले वहाँ वहाँ कमल का फूल खिल उठा । इस तरह कमल का पुल ही बन गया । सनन्दन गुरु के पास आ गये । लेकिन दिल गुरु की भक्ति में लगे रहने के कारण फूल का पुल बनने की बात उनको मालूम नहीं थी । जब शंकराचार्य जी ने उनसे पूछा कि नदी का पार कैसे किया, सनन्दन ने उत्तर दिया – आचार्य जी, अगर आपको स्मरण करूं तो जन्म-मृत्यु से भरे इस संसार के सागर को भी पार कर सकूँ । तब गंगा को पार करने में आश्चर्य की बात नहीं है । पद्मों पर पैर रखकर नदी पार करने के कारण शंकराचार्य जी ने उनको पद्मपाद नाम से पुकारा ।
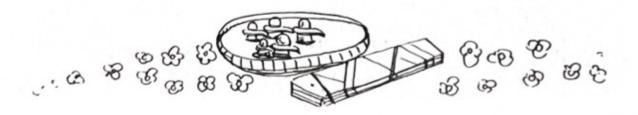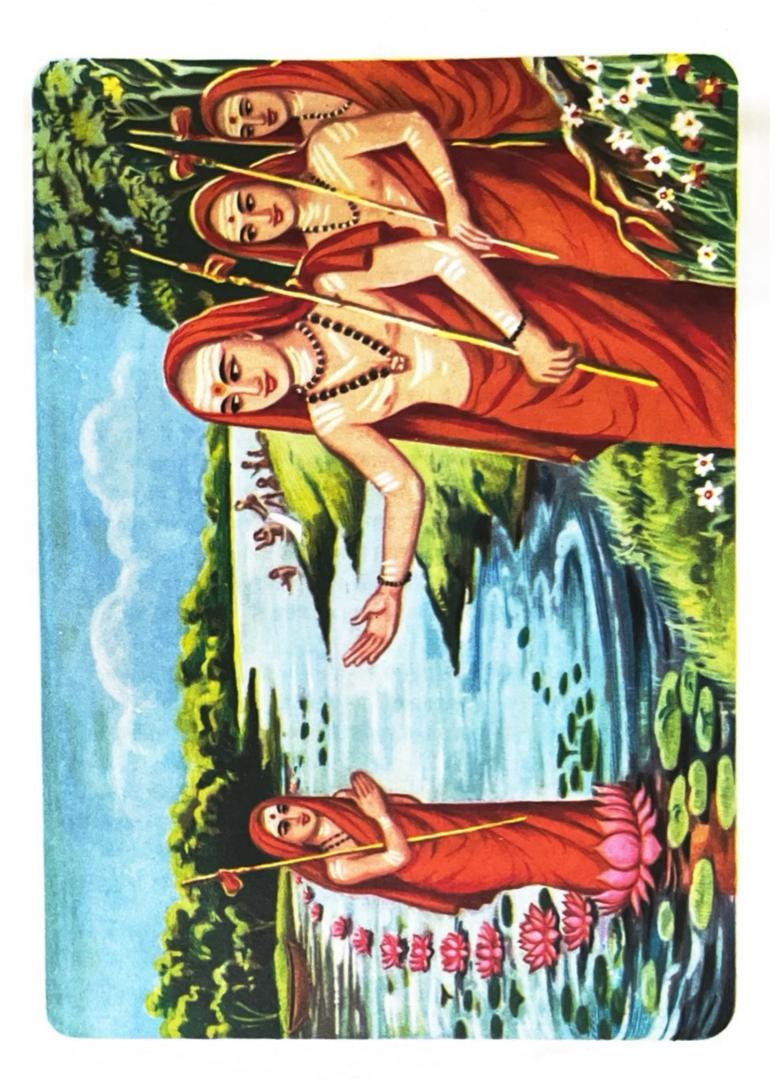
एक बार शंकर जी गंगा में स्नान करके शिष्यों के साथ विश्वनाथ जी के मन्दिर की ओर जा रहे थे। तब एक हरिजन चार कुत्तों के साथ शंकराचार्य जी के रास्ते में आया। उसे देखकर शंकर के शिष्यों ने कहा कि जा! जा! हट जा! दूर हट जा। वह हरिजन हँस पडा और बोला कि आप तो अद्वैत वाद का प्रचार करते हैं। लेकिन मुझे हट जाने को कहते हैं। ये दोनों विरुद्ध है। अद्वैतसिंद्धान्त के अनुसार सभी उसी परमात्मा के अंश है जैसे आप परमात्मा के अंश है वैसे मैं भी। शरीर से हम भिन्न भिन्न होने पर भी हम सबकी आत्मा एक है। शरीरात्मवाद को छोडकर सब को एकात्मवाद का उपदेश आपके गुरु जी दे रहे हैं। फिर भी आपके शरीर से मेरा शरीर दूर होने के लिए कहना बेकार है। आपकी आत्मा से मेरी आत्मा अलग नही हो सकता क्योंकि तेजोरूपीआत्मा सब कहीं एक है। अगर आप मुझे दूर होने को कहें तो उसके मतलब है, मैं अपनी आत्मा से ही अलग हो जाऊँ यह असंभव है। इस तरह प्रश्नों का बौच्छार कर दिया।

तुरंत ही सत्य पर निर्भर शंकर जी को मालूम हुआ कि यह बडा ज्ञानी दीखता है, न कि साधारण हरिजन। शायद काशी विश्वनाथ जी ही मेरी परीक्षा के लिए इस रूप में आये हैं। यह सोचकर मनीषापंचक नामक पांचश्लोकों को सुनाया।

उस समय हरिजन के स्थान पर विश्वनाथ जी का आविर्भाव हुआ। चारों कुत्ते चार वेद स्वरूप बने। विश्वनाथजी बोले कि मेरा ही अंश भूत हे शंकर। तुम कथन छोडकर अद्वैत सिद्धान्त को अपने जीवन में अमल करनेवाले हो। इस घटना से अद्वैत पर तुम्हारी सत्यवादिता मशहूर हो जाय। यह कहकर तिरोहित हुए।

शंकराचार्य जी की उम्र सोलह पूरा होनेवाली थी। एक दिन एक बडा बूढा ब्राह्मण उनसे वाद विवाद करने आया। शंकराचार्य जी के ब्रह्मसूत्र भाष्य के विरुद्ध कई आक्षेप उर्णस्थित किये गये। लेकिन शंकराचार्य जी अपनी बुद्धिमत्ता से प्रतिवादियों की युक्तियों का खण्डन किया। वह बूढा ब्राह्मण भी मामूली आदमी नहीं था। इसीलिए जब शंकराचार्य जी ने एक तत्व को स्थापना की तो दूसरे ही वाक्य में वह ब्रह्मण कई आक्षेप प्रकट करने लगे। इसी तरह वाद विवाद घण्टों और कई दिनों तक चलता रहा। यह देखकर पद्मपादाचार्य को बहुत आश्चर्य हुआ और सोचा – यह बूढा कोई साधारण आदमी नहीं होगा। हमारे गुरुजी जैसे यह भी भगवान का अवतार ही होगा। यह सोचकर भक्ति भरे दिल से उन दोनों को देखा। उस भक्ति के कारण पद्मपादाचार्य को यह सत्य की बात मालूम हुई कि वह बूढा दूसरा कोई नही है। कितु ब्रह्मसूत्र के रचयिता भगवान व्यासजी ही है। वह तो विष्णु का अवतार है। शंकराचार्य को भी मालूम हुआ यह बूढा व्यास भगवान ही है। फिर उनका नमस्कार करते हुए कहा कि आपसे वाद विवाद करके अपचार कर चुका।

व्यासजी हँसते हुए बोले – आर्य ! अगर मैं अपने ही रूप में आता तो तुम वाद विवाद करने की चतुरता न दिखाते। इसीलिए ही वेष बदलकर आया। तुम्हारा ब्रह्मसूत्र भाष्य ही मेरे दिल पसंद बात है। वही सत्य भी है। तुम इस सत्य का प्रचार देश भर में करो। आज तुम्हारी सोलहवीं उम्र का अन्तिम दिन है। तुम्हारी आयु अब खतम नही होगी। ब्रह्मा से और सोलह साल के जीवन के लिए वर माँग लाया हूं। इस जीवन की दशा में तुम्हारे भाष्य का प्रचार देश भर में हो जाय। यह कहकर व्यास जी अन्तर्धान हुए।
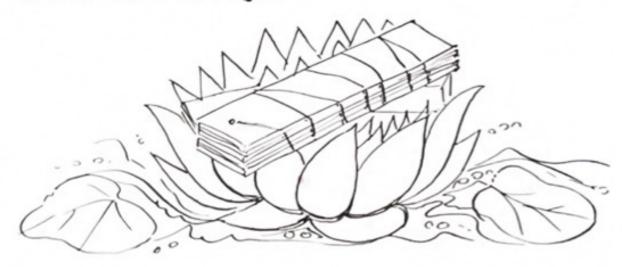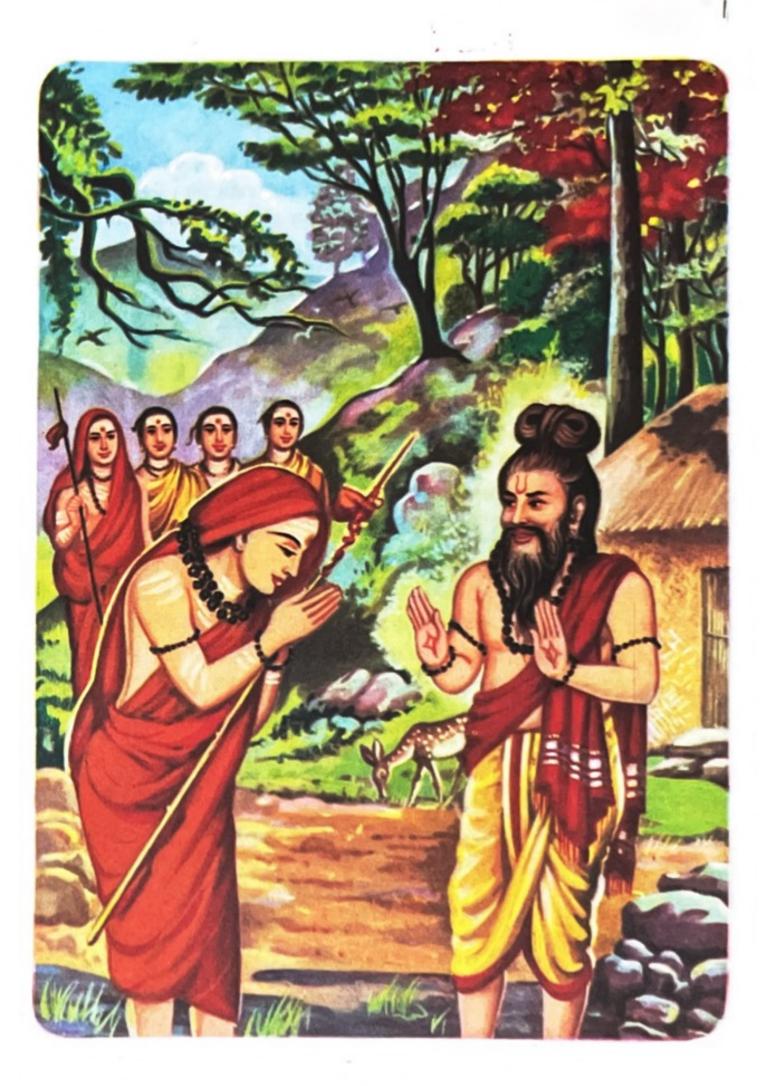
शंकराचार्य जी देश भर में अद्वैत तत्व का प्रचार करने के लिए काशी से रवाना हुए। वहाँ से सीधे प्रयाग गये। वहाँ विद्वान कुमारिल भट्ट मरनेवाले थे। उनको अद्वैत सिद्धान्त को मानने में सफल हुए तो उनके करोडों शिष्य अद्वैत सिद्धान्त के अनुयायी बनेंगे। कुमारिल के शिष्य सभी कर्ममीमांसक कहे जाते थे। बौद्ध धर्म में वैदिक कर्म का आदर नहीं है। कुमारिल भट्ट बौद्ध सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिए पहले उन्हीं के असली तत्व को जानना चाहते थे। इसीलिए खुद ही वेष बदलकर एक बौद्ध शिष्य के समान बौद्धों के बीच में रहकर उनके सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझ लिया। बाद को वैदिक कर्म काण्ड की आवश्यकता बताते हुए इनको न माननेवाले बौद्ध धर्म का समूल खण्डन किया। एक दिन कुमारिल भट्ट को यह सोचकर बहुत दुःख हुआ कि वेष बदलकर बौद्धों के बीच में रहकर उनके सिद्धान्तों को पहचाना। वे भी मुझे अपना समझते थे। यह प्रायश्चित्त करने लायक काम है। इसका प्रायश्चिन्त है 'भूस की आग में कूदना'। उसी आग में जल भुनकर मरना है।

यह सोचकर कुमारिल भट्ट ने वैसा ही किया। उसी अवसर पर शंकराचार्य जी उनके पास गये और उनसे बोले – मान्य भट्ट जी ! आपने बौद्ध धर्म का खण्डन किया और वैदिक कर्म काण्ड की स्थापना की। यह उचित ही है। लेकिन बेजान कर्म खुद फल नहीं दे सकता। इन कर्मों को नियत रूप में रखने वाले ईश्वर ही फल देनेवाला है। अद्वैत ही शाश्वतिक सत्य है और आनन्द है।

इस बात को सुनकर कुमारिल भट्ट ने भी अद्वैत तत्व को स्वीकार किया। भूस की आग में ही समा गया।
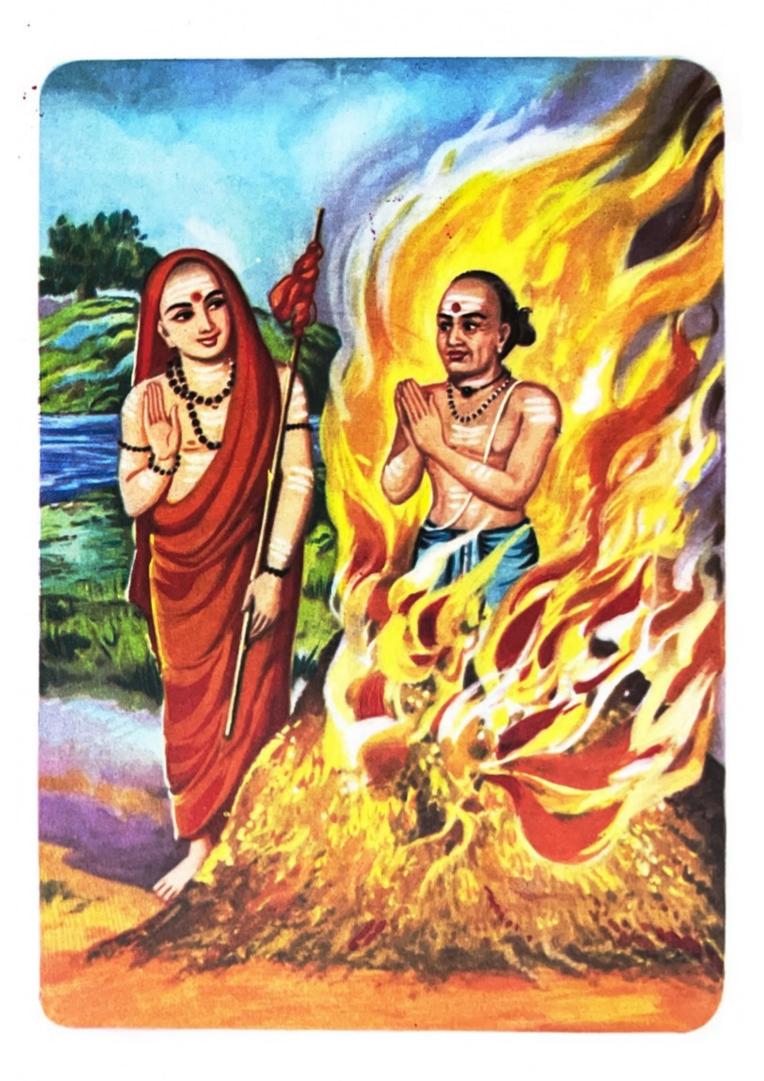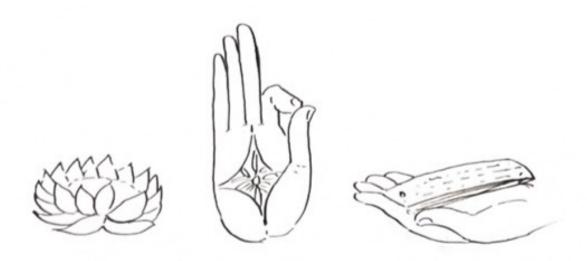
शंकराचार्य ने सोचा – प्रसिद्ध विद्वान मण्डन मिश्र को जीतना अद्वैत की प्रतिष्ठा का कारण होगा। यह सोचकर माहिष्मती नगर में जाकर मण्डन मिश्र के घर गये। उस शहर में सभी पामर से बडे तक और तोते भी कर्म काण्ड के वचन को घोषित करते थे। जब शंकर जी मण्डन मिश्र के घर गये तब उनके यहाँ श्राद्ध कर्म हो रहा था।इसीलिए दर्वाजा बन्द था। फिर भी शंकर जी अपनी विशेष शक्ति से घर के भीतर पहुँच गये। श्राद्ध के समय शंकर को देखकर मण्डन मिश्र को गुस्सा आया और गुस्से भरे वचन का जवाब शंकर जी ने हंसते हंसते दिया। हास्य में भी छिपी बुद्धिमत्ता देखकर मण्डनमिश्र चकित हुए। खुद विद्वान होने के नाते
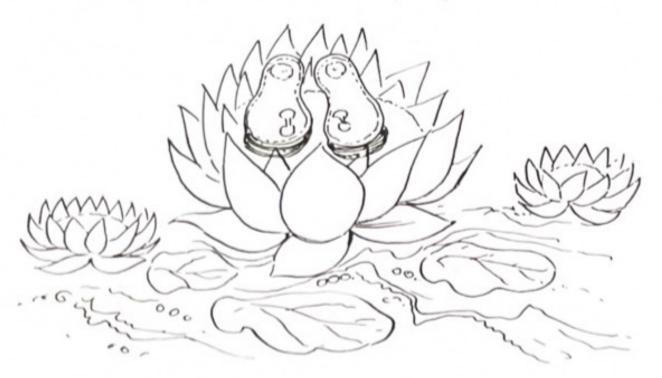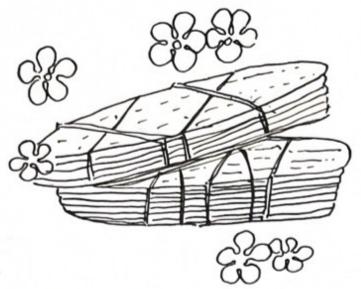
उनसे वाद विवाद करने लगे । शंकरजी की इच्छा भी यही थी कि श्राद्ध कर्म पूरा करके वाद विवाद करने दोनों बैठें । मण्डनमिश्र न्यायाधीश के रूप में और एक को नियुक्त करना चाहते थे । शंकर ने जवाब दिया कि आप की धर्मपत्नी ही इस स्थान का लायक है । मण्डन मिश्र की पत्नी पहले हिचहिचायी और समझ लिया कि साक्षात् शिवजी ही शंकर के रूप में आये है । इसीलिए उसने कहा कि दोनों फूलों की माला पहने और जिसकी माला पहले मुरझाती है उसकी हार माननी चाहिए । बहुत जोर से वाद प्रतिवाद चलता रहा । आखिर मण्डनमिश्र जी की माला मुरझाई । पत्नी का चेहरा भी कुम्हलाया । वाद विवाद शुरू करते समय यह शर्त रखी गयी कि मण्डन मिश्र हार जाय तो उनको सन्यास स्वीकार करना पडेगा । अगर शंकरजी हार जाये उसको गृहस्थ करना पडेगा । उस शर्त के अनुसार अब मण्डन मिश्र सन्यास लेकर चलने लगे । तब मण्डन मिश्र की पत्नी सरस्वती जी के अवतार होने के कारण शंकराचार्य के सामने आकर बोली कि पत्नी को अर्धांगिनी कहते है । इसीलिए आप मुझे भी जीते तभी आप की जीत पूरी मानी जायगी ।
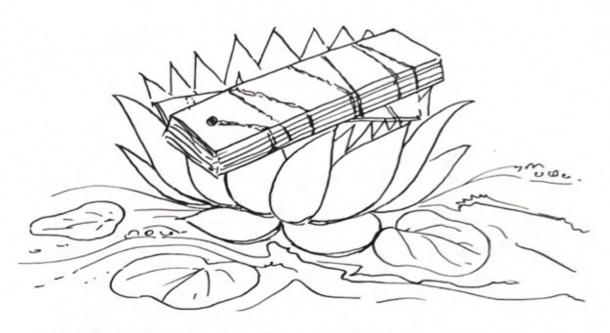
उस वचन की सत्यता मानकर शंकर उससे भी वाद विवाद करने लगे। बुद्धिमती पत्नी ने बहुत जटिल प्रश्नों का बौछार किया। शंकर ने तो अद्‌भुत रूप से सबका उत्तर दे दिया। वाद में हार कर सरस्वती सत्य लोक जाने लगी तो शंकराचार्य जी ने वन दुर्गामन्त्र के प्रभाव से उसे जाने से रोक दिया और कहा कि माँ जी आपको इस संसार में यह काम करना है। इसीलिए मेरा पीछा कीजिए
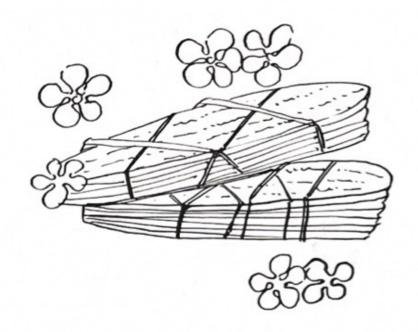
मण्डन मिश्र सन्यास लेकर सुरेश्वरके नाम से मशहूर हुए । सभी कर्ममार्ग के अनुयायी ज्ञानमार्ग का अनुसरण करने लगे ।

कुछ लोग कर्म मार्ग को उत्तम मानते थे और कुछ लोग भक्ति मार्ग उत्तम मानते थे । ये दोनों आपस में लडते थे । लेकिन शंकराचार्य जीने ज्ञानमार्ग की प्रतिष्ठा
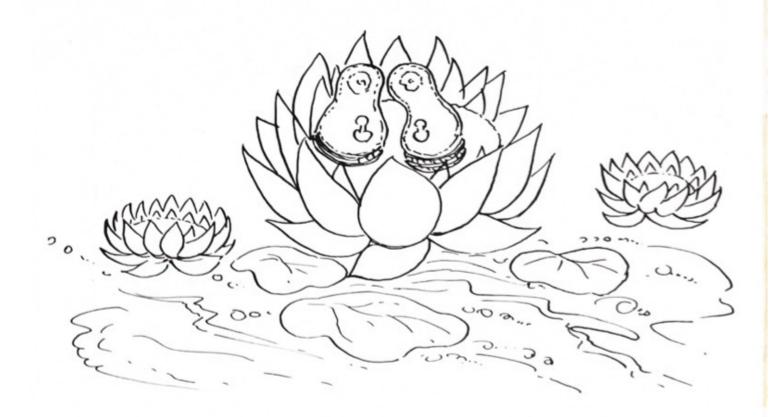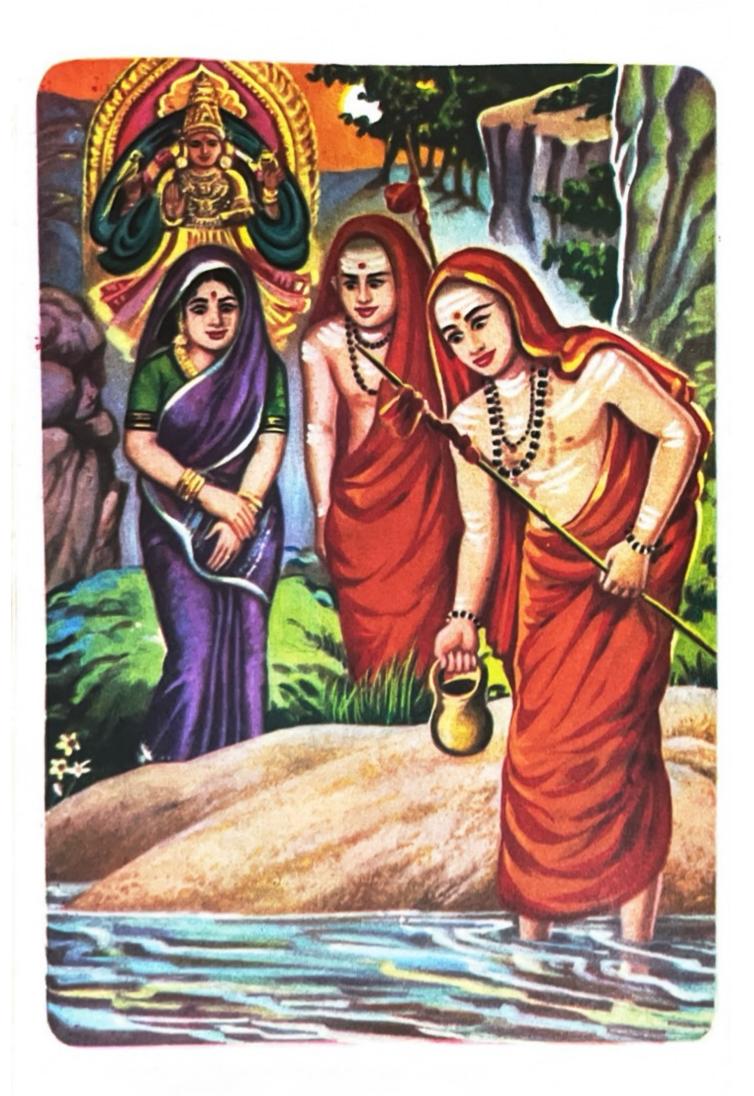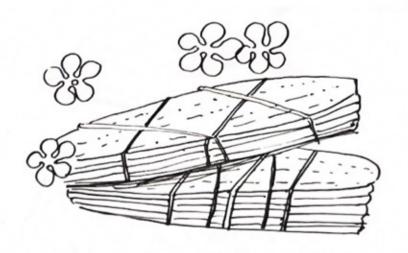
करके आनन्द स्वरूप ही भगवान है । इसमें काम, क्रोध आदि की गुंजाइश नहीं है । इस तत्व का प्रचार करते करते देशभर में घूमते थे । जब शंकरजी तुंगभद्रा नदी के किनारे श्रृंगगिरि पहुँचे तब मण्डनमिश्र की पत्नी भी उनके पीछे आ रही थी । उस समय रेत में सरस्वती एक मिनट रुकी तो शंकरजी ने पीछे मुडकर देखा तब सरस्वती वहाँ से न हटी । तुरंत शंकराचार्य जी ने वहाँ एक पीठ की प्रतिष्ठा करके सरस्वती को वहीं पर स्थापित किया । उसीको आज भी श्रृंगगिरि शारदापीठ कहते हैं । अद्वैत सिद्धान्तों को ग्रन्थ के रूप में रहना भी काफी नहीं किंतु उस तत्व का हमेशा के लिए लोगों में प्रचार करने के लिए कई स्थानों में मठों की स्थापना की । उन सब मठाधिपतियों को शंकराचार्य के नाम से पुकारते थे । अब उन मठों में परंपरागत शिष्य वर्ग रहते हैं ।
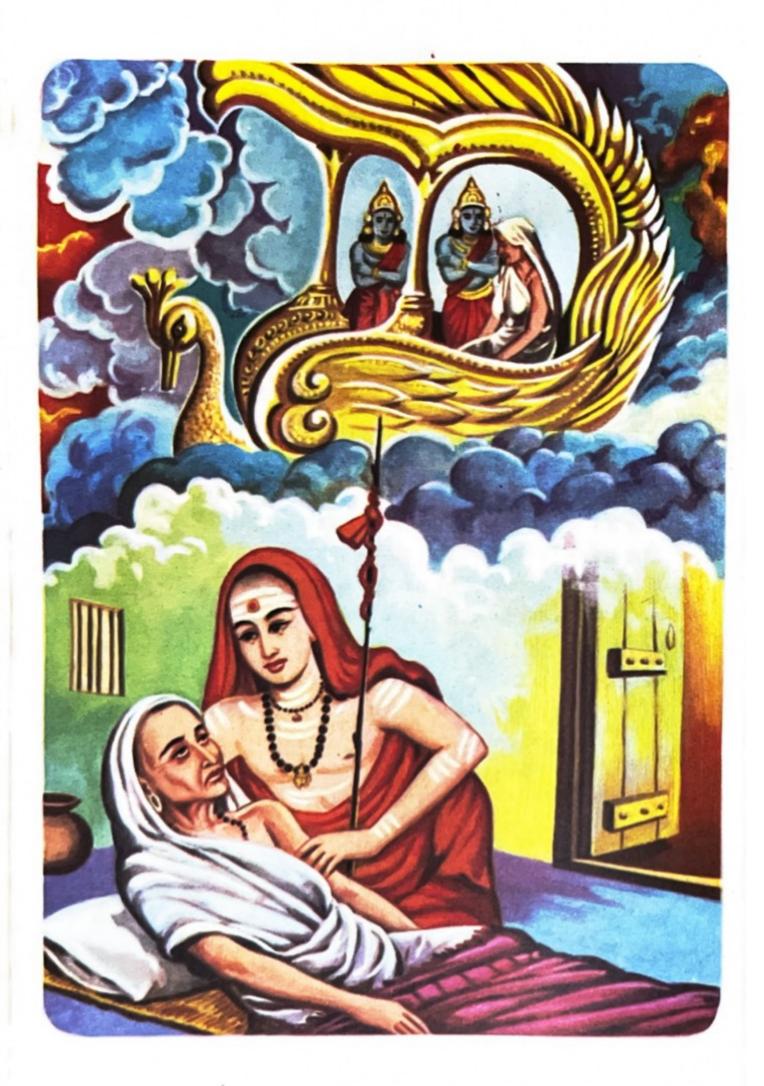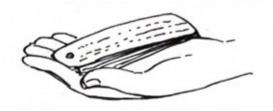
जब आदि शंकरजी श्रृंगगिरि में रहे तब माँ की बुरी हालत जानकर मृत्यु के समय उसके पास रहने की आशा से कालडि आ गये । जीवन के अंतिम समय में अपने प्यारे बेटे को देखकर आर्याम्बा बहुत खुश हुई । शंकरजी ने भगवान विष्णु की स्तुति की । तुरंत ही वैकुण्ठ से विष्णु के पार्षद विमान में आये और आर्याम्बा को उसपर बिठाकर वैकुण्ठ चले गये ।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शंकरजी माता का दाह संस्कार खुद ही करने लगे। यह सन्यासी का धर्म नहीं है । इसीलिए वहाँ के लोग और रिश्तेदार यह काम अन्याय कहकर चले गये । सत्य के पालन में डटै रहकर अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए अकेला ही घर के बगीचे में ही चिता में माता का दाह संसार किया । आचार्य का आचरण आदर्श है ।

माँ का संस्कार करके धरती पर अवतार लेने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश भर में पैदल घूमा करते थे । सब कहीं दूसरे धर्मालम्बियों को जीत कर वैदिक मार्ग की स्थापना की । कई देवालयों में यन्त्रों की स्थापना की । इससे लोगों को प्रसाद मिला । चार बार भारत भर में पर्यटन कर चुके । उसका परम उद्देश्य यहीं था लोगों का कल्याण । इस काम के लिए अच्छे उपदेशों द्वारा लोगों को सन्मार्ग में परिवर्तित किया ।
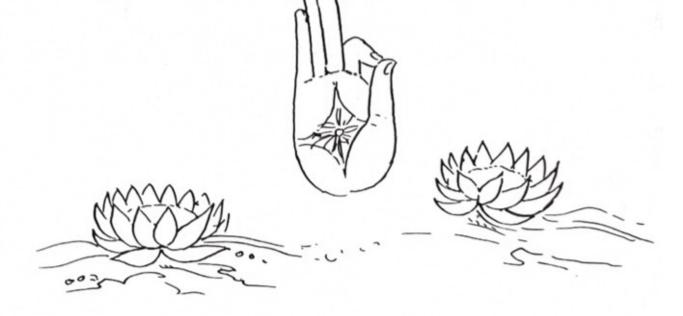
पर्यटन के समय कर्णाटक में मूकाम्बिका क्षेत्र गये । वहाँ अम्बिका के उग्र रूप को मन्त्र बल से एक चक्र में उतारकर सौम्य रूप दे दिया । उस गाँव में एकविप्र अपने गूंगे पुत्र को साथ लेकर शंकर जी के दर्शन करने आये । शंकरजी ने उस बालक से पूछा।–।'तुम कौन हो ।' तुरंत ही उस बालक'ने जवाब दिया कि मैं शरीर नहीं हूँ । मैं हूँ आत्मा जो सत्य और सब कहीं व्यापक है । असली तत्व को हाथ के आँवले के समान अच्छी तरह जाने उस लडके को 'हस्तामलक' नाम से विख्यात किया । अपने मुख्य शिष्यों में उन्हें भी गिनने लगे । पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक ये तीनों आचार्यजी के पास भाष्य पढ रहेथे।
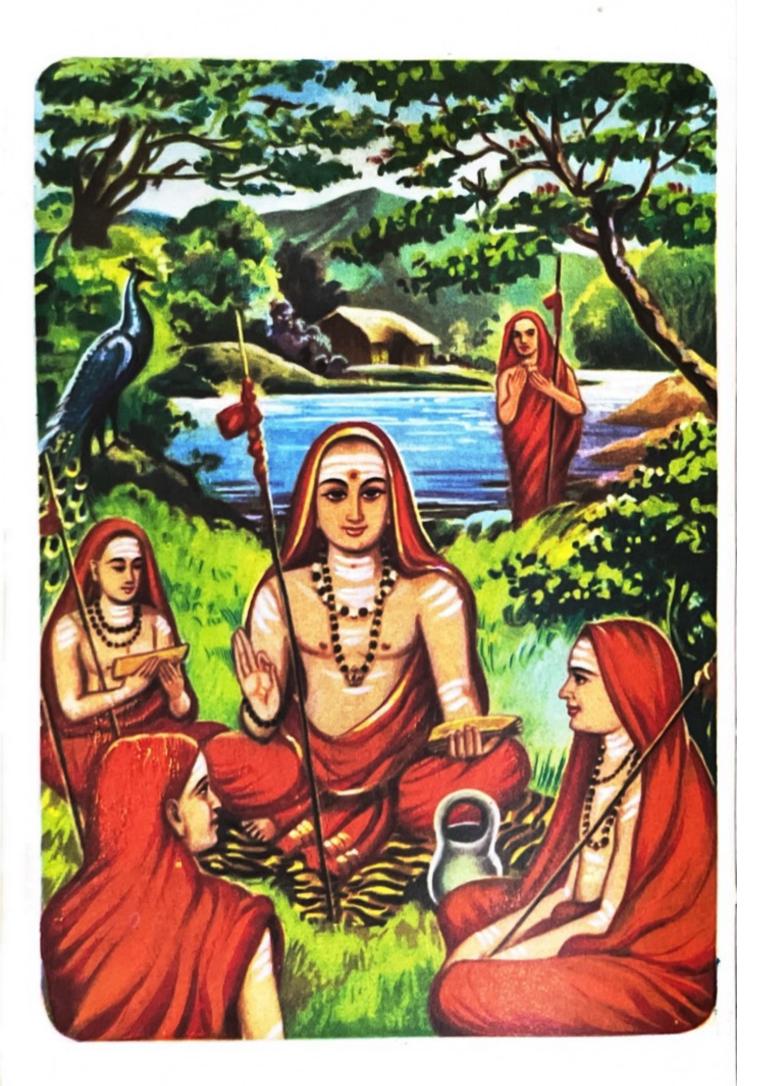
ये तीनों एक शिष्य को 'गिरि' कहकर परिहास किया करते थे । नम्रावतार गिरि भाष्यपठन के समय कुछ नहीं बोलते । कोई संदेह भी नहीं पूछते थे । इसलिए बाकी लोग उसे अज्ञ समझकर उसकी लापरवाही करते थे । लेकिन वह अपने शरीर से उनकी शुश्रूषा कर सकते थे । यह भाव दूसरे चेलों के मन में था । सर्वज्ञ शंकरजी तो यह समझ गये । इसलिए एक दिन दूसरे लोगों के आने के बाद भी प्रवचन शुरू नहीं किया । किंतु गिरि की प्रतीक्षा में थे। दूसरे शिष्य तो यह देखकर मन ही मन गुनगुनाने लगे । थोडी देर के बाद गिरि आया । रोज की अज्ञ न बनकर आनन्द सागर में डूबकर नाचते कूदते आये। उस समय जो आठ श्लोक उनसे गाये गये उन्हें सुनकर दूसरे चेले बहुत विस्मित हुए । उन श्लोकों का नाम है 'तोटकाष्टक' । तोटक वृत्त में स्तुति करने के कारण शंकरजी ने उन्हें 'तोटक' नाम से ही पुकारा । उस दिन से 'तोटकाचार्य' नाम से मशहर हुए ।

तमिलनाडु में सभी क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा करते समय शंकरजी मध्यार्जुन क्षेत्र गये । वहाँ के शिवाद्वैत के विद्वान लोग ईश्वर-जीव ऐक्य को मानने में तैयार नहीं थे । उनका कहना था ईश्वर तो सर्वशक्तिमान है, जीव तो अल्पज्ञ है । इसीलिए दोनों एक नहीं हो सकते । अगर हमारे शिव जी ही अद्वैत को सत्य कहें तो हम आपका अद्वैत मान लेंगे ।

उसे सिद्ध करने के लिए शंकराचार्य जी शिवाद्वैत विद्वानों के साथ मन्दिर गये। वहाँ जाकर शिवलिंग के सामने खडे हुए । तुरंत उस लिंग से एक हाथ निकल आया। हाथ को ऊपर कर के लिंग से ही यह आवाज निकली कि अद्वैत सत्य है । (सत्यं अद्वैतम्) वहाँ उपस्थित सभी लोगों के रोंगडे खडे हुए।आचार्यजी ने गदगद होकर ईश्वर को धन्यवाद दिया । शैव विद्वान भी तब से शंकरजी को अपना गुरु मानने लगे ।

मध्यार्जुन क्षेत्र में एक शंकरमठ है जिसमें एक पत्थर में शिल्प खुदा हुआ है कि लिंग की मूर्ति से एक हाथ आगे बढा है । इस शिल्प को काञ्ची मठ के कामकोटि पीठाधीश ने ही बनवाया ।

तमिलनाडु में सभी क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा करते समय शंकरजी मध्यार्जुन क्षेत्र गये। वहाँ के शिवाद्वैत के विद्वान लोग ईश्वर-जीव ऐक्य को मानने में तैयार नहीं थे। उनका कहना था ईश्वर तो सर्वशक्तिमान है, जीव तो अल्पज्ञ है। इसीलिए दोनों एक नहीं हो सकते। अगर हमारे शिव जी ही अद्वैत को सत्य कहें तो हम आपका अद्वैत मान लेंगे।

उसे सिद्ध करने के लिए शंकराचार्य जी शिवाद्वैत विद्वानों के साथ मन्दिर गये। वहाँ जाकर शिवलिंग के सामने खडे हुए। तुरंत उस लिंग से एक हाथ निकल आया। हाथ को ऊपर कर के लिंग से ही यह आवाज निकली कि अद्वैत सत्य है। (सत्यं अद्वैतम्) वहाँ उपस्थित सभी लोगों के रोंगडे खडे हुए।आचार्यजी ने गदगद होकर ईश्वर को धन्यवाद दिया। शैव विद्वान भी तब से शंकरजी को अपना गुरु मानने लगे।

मध्यार्जुन क्षेत्र में एक शंकरमठ है जिसमें एक पत्थर में शिल्प खुदा हुआ है कि लिंग की मूर्ति से एक हाथ आगे बढा है। इस शिल्प को काञ्ची मठ के कामकोटि पीठाधीश ने ही बनवाया।

वहाँ से चिदम्बर क्षेत्र गये। इनके प्राचार्य गौडपादाचार्य जी पतंजलि से व्याकरण का अध्ययन कर चुके। शंकरजी पंतजलि के महाभाष्य के प्रवचन मन्दिर जाकर उस स्थान का सम्मान किया। चित्सभेश नटराज जी के मंदिर में पञ्चाक्षर और अन्नाकर्षण यन्त्रों की स्थापना की। जब शकरजी जम्बुकेश्वर गये वहाँ की अखिलाण्डेश्वरी देवी की मूर्ति उग्र थी। उस उग्रता को ताटङ्क में उतारकर उन ताटङ्कों को देवीजी का कर्णाभूषण बना दिया। इस ताटङ्क का समय समय पर मंत्र प्रभाव से शक्ति शाली बनाने का काम काञ्ची कामकोटि पीठाधीशों का ही कर्तव्य बना रहा है।

घूमते घूमते जगन्नाथपुर जो पूर्वी समुद्र किनारे पर है, गये। वहाँ एक मठ की स्थापना की। और पद्मपाद जी को उस मठ का अधीश बना दिया। उसका नाम है गोवर्धन पीठ। इसी तरह पश्चिम समुद्र के किनार भी कृष्ण के स्थान द्वारका में एक मठ की स्थापना की और हस्तमलक को वहाँ मठाधीश बनाया।

तीर्थ यात्रा प्रसंग में दक्षिण समुद्र के किनारे तिरुच्चेंदूर जाकर सुब्रहमण्य भुजंग नामक स्तोत्र बनाकर सुब्रहमण्य की महिमा का प्रचार किया।
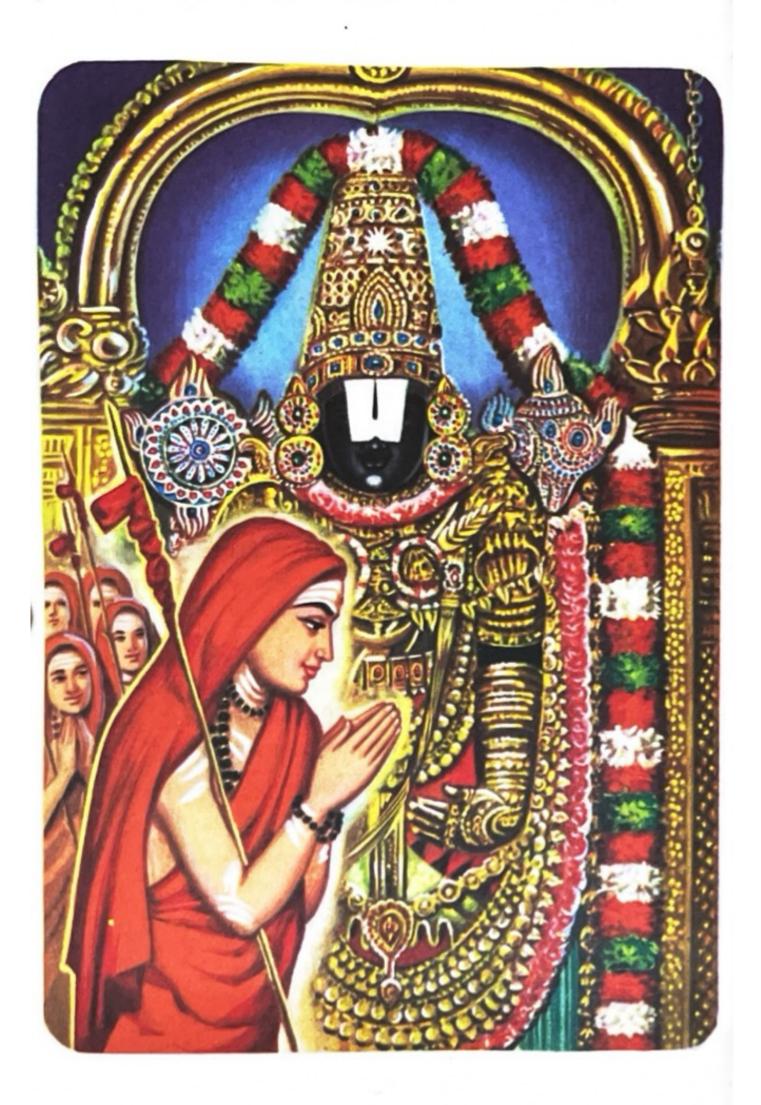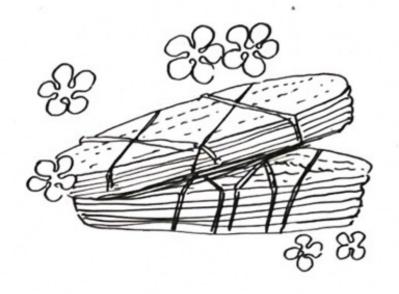
विष्णु दिव्य क्षेत्रों में श्रीरंग और तिरुपति महत्वपूर्ण हैं। जम्बुकेश्वर जाते समय ही शंकराचार्य जीने श्रीरंगनाथ के दर्शन किये और जनाकर्षण यन्त्र की स्थापना की। तिरुपति के विष्णु को हिन्दी में बालाजी कहते हैं। वहाँ जाकर बालाजी के मन्दिर में भक्ति परवश होकर विष्णु पादादि केशान्त स्रोत्र की रचना की। साथ ही घनाकर्षण यन्त्र की स्थापना की।

द्वादश ज्योतिर्लिंग (सोमनाथ, ओंकारनाथ, बराले वैद्यनाथ, भीम शंकर रामनाथ, दारुकावनेश्वर, काशी विश्वनाथ, नासिक त्र्यम्बकनाथ (गौतमीतट में) केदारनाथ घृसृणेश्वर आदि) क्षेत्र में गये। उन सबका एक स्तोत्र द्वादश ज्योतिलिग स्तोत्र नाम से आचार्य ने किया।
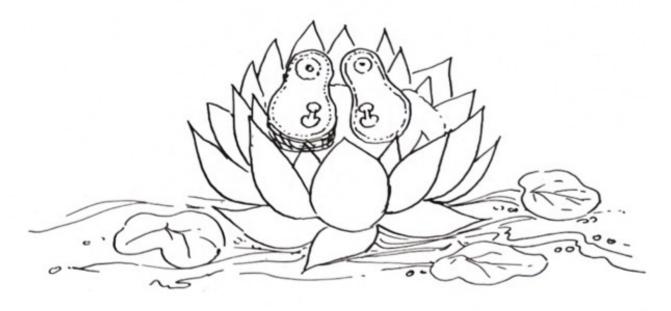
श्रीशैल के मल्लिकार्जुन श्रीशंकर के बहुत मन पसंद का क्षेत्र था। मल्लिका लता अर्जुन वृक्ष के साथ लगी है। उस पेड के नीचे शिवलिंग है। इसीलिए शिवजी का नाम मल्लिकार्जुन पडा। उस लिंग के संनिधान में भक्ति भरे शंकरजी के हृदय से जिस स्तुति का आविर्भाव हुआ उसका नाम है शिवानन्दलहरी। यह एक सौ श्लोकों का संग्रह है।

मल्लिकार्जुन से कुछ दूर पर हाटकेश्वर नामक निर्जन स्थान है। वहाँ शंकराचार्य जी बहुत दिनों तक अकेले तपस्या करते थे।

उस समय अपने क्रूर भाव को पूरा करने के लिए क्रकच नामक कापालिक वहाँ आया । कापालिकों का स्वभाव है श्मशान में रहना, खप्परों की माला पहनना, नरबलि और जानवरों की बलि देना, इस रूप से ईश्वर की आराधना करना । उन कापालिकों का नेता था क्रकच । शंकराचार्य का उपदेश है सात्विक रूप से ईश्वर की आराधना करना । कापालिकों को खुद उग्र मार्ग से उपासना करने के कारण शंकराचार्य का प्रचार विरोधसा दीख पडा । क्रकचने शंकराचार्य से पूछा कि आप के सिर का बलि दान करने से शिवजी बहुत प्रसन्न होंगे और इससे लोक कल्याण होगा । शंकरजी ने उसकी संमति देते हुए कहा कि मैंने यह शरीर किसी भी काम में अनुपयुक्त समझा/ अब उसका भी उपयोग है तो मुझे बहुत खुशी है । यों कहकर शंकरजी ध्यान में लीन हुए । कापालिक ने शंकरजी का सिर काटने के लिए तलवार ऊपर उठायी तो पद्मपाद के शरीर में उग्र नरसिंहजी का आविर्भाव हुआ । उस नरसिंहजी की शक्ति और प्रेरणा से एक ही क्षण में हाटकेश्वर में उपस्थित हुए । कापालिक तो सिर काटने ही वाला था। इतने में नरसिंह जी के जैसे पद्मपाद ने अपने नाखून से कापालिक को फाड डाला ।

बाद को नरसिंह का उग्र रूप शान्त हुआ । श्री शंकरजी नरसिंह जी की स्तुति करके अहोबिल नामक नरसिंह क्षेत्र गये । इसी तरह हिमालय पर संचार करते हुए बदरिकाश्रम पहुँचे । वहाँ महाविष्णु के दर्शन हुए । विष्णु ने शंकराचार्य जी से कहा कि इस अलकनन्दा नदी के किनारे मेरी ही एक मूर्ति मिट्टी में गढी है । उस मूर्ति को लेकर यहाँ प्रतिष्ठा करो । शंकराचार्य जी ने अलकनन्दा के किनारे खोदकर यह दिव्य विग्रह पाया और वहाँ उस मूर्ति की प्रतिष्ठा करके बदरी नारायण नाम से पुकारा ।

उस समय अपने क्रूर भाव को पूरा करने के लिए क्रकच नामक कापालिक वहाँ आया। कापालिकों का स्वभाव है श्मशान में रहना, खप्परों की माला पहनना, नरबलि और जानवरों की बलि देना, इस रूप से ईश्वर की आराधना करना। उन कापालिकों का नेता था क्रकच। शंकराचार्य का उपदेश है सात्विक रूप से ईश्वर की आराधना करना। कापालिकों को खुद उग्र मार्ग से उपासना करने के कारण शंकराचार्य का प्रचार विरोधसा दीख पडा। क्रकचने शंकराचार्य से पूछा कि आप के सिर का बलि दान करने से शिवजी बहुत प्रसन्न होंगे और इससे लोक कल्याण होगा! शंकरजी ने उसकी संमति देते हुए कहा कि मैंने यह शरीर किसी भी काम में अनुपयुक्त समझा/ अब उसका भी उपयोग है तो मुझे बहुत खुशी है। यों कहकर शंकरजी ध्यान में लीन हुए। कापालिक ने शंकरजी का सिर काटने के लिए तलवार ऊपर उठायी तो पद्मपाद के शरीर में उग्र नरसिंहजी का आविर्भाव हुआ। उस नरसिंहजी की शक्ति और प्रेरणा से एक ही क्षण में हाटकेश्वर में उपस्थित हुए। कापालिक तो सिर काटने ही वाला था। इतने में नरसिंह जी के जैसे पद्मपाद ने अपने नाखून से कापालिक को फाड डाला।

बाद को नरसिंह का उग्र रूप शान्त हुआ। श्री शंकरजी नरसिंह जी की स्तुति करके अहोबिल नामक नरसिंह क्षेत्र गये। इसी तरह हिमालय पर संचार करते हुए बदरिकाश्रम पहुँचे। वहाँ महाविष्णु के दर्शन हुए। विष्णु ने शंकराचार्य जी से कहा कि इस अलकनन्दा नदी के किनारे मेरी ही एक मूर्ति मिट्टी में गढी है। उस मूर्ति को लेकर यहाँ प्रतिष्ठा करो। शंकराचार्य जी ने अलकनन्दा के किनारे खोदकर यह दिव्य विग्रह पाया और वहाँ उस मूर्ति की प्रतिष्ठा करके बदरी नारायण नाम से पुकारा।

इस पवित्र यात्रा के बाद केदारनाथ गये । वहाँ अपने भौतिक शरीर छोडकर योग शक्ति से सूक्ष्म शरीर के साथ कैलास गये । कैलास में पार्वती परमेश्वर के दर्शन किये । शिवपादादिकेशान्त स्तोत्र की रचना की । इससे अतृप्त होकर शिवके केशादिपादान्तस्तोत्र की रचंना की । शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और पाँच स्फटिक लिंग शंकराचार्य जी को दिया । पार्वती की स्तुति किये बिना शंकरजी अवाक् रह गये । तुरंत शिवजी ने शंकराचार्य को सौन्दर्यलहरीनामक देवी स्तोत्र को दिया जिसे खुद ही बनाया था ।

पाँच स्फटिक लिंग पाकर प्रसन्न होकर शंकराचार्य जी कैलास से रवाना हुए। द्वारपालक नन्दि देव की प्रार्थना से सौन्दर्य लहरी के आधे भाग को नन्दि देव को दे दिया । शंकरजी के पास सिर्फ् इकतालीस श्लोक ही बाकी रहे । जब कैलास से बाहर निकले तब पार्वती के अनुग्रह से खुद ही उनसठ श्लोकों की रचना की । फिर सौन्दर्य लहरी सौ श्लोक का ग्रन्थ बन गया । सौन्दर्य लहरी के पारायण से ऐहिक और आयुष्मिक फल मिलेंगे । कैलास से रवाना होकर शंकराचार्य जी नेपाल पहुँचे।
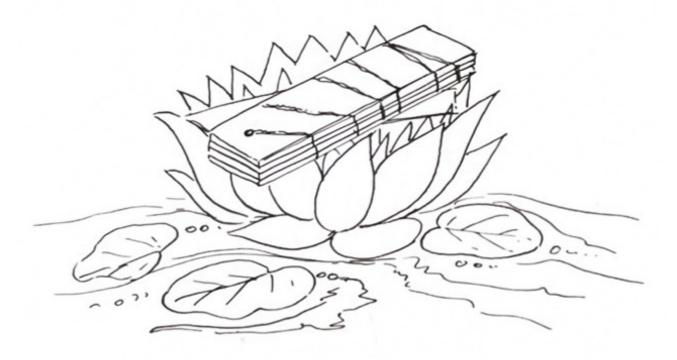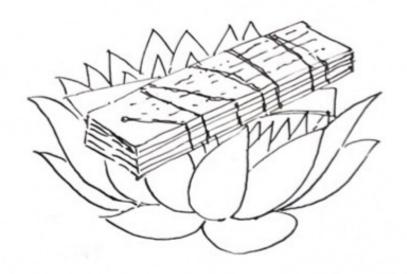
यहाँ उनका राजसंमान हुआ। वहाँ के पशुपति नाथ मंदिर गये। वहाँ पाँच मुखवाला लिंग है। यह शिवजी के पुण्य क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। वहाँ पशुपति नाथ के दर्शन करके शिवजी की आरधना पद्धति को सुचारु रूप दिया। उस क्षेत्र में गुहेश्वरी देवी का मन्दिर है जो इक्कावन शक्ति पीठों में एक माना जाता है। उनके दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए। नेपाल के नील कण्ठ क्षेत्र में पाँच स्फटिक लिंगों से एक की स्थापना की उसका नाम वरलिंग है।
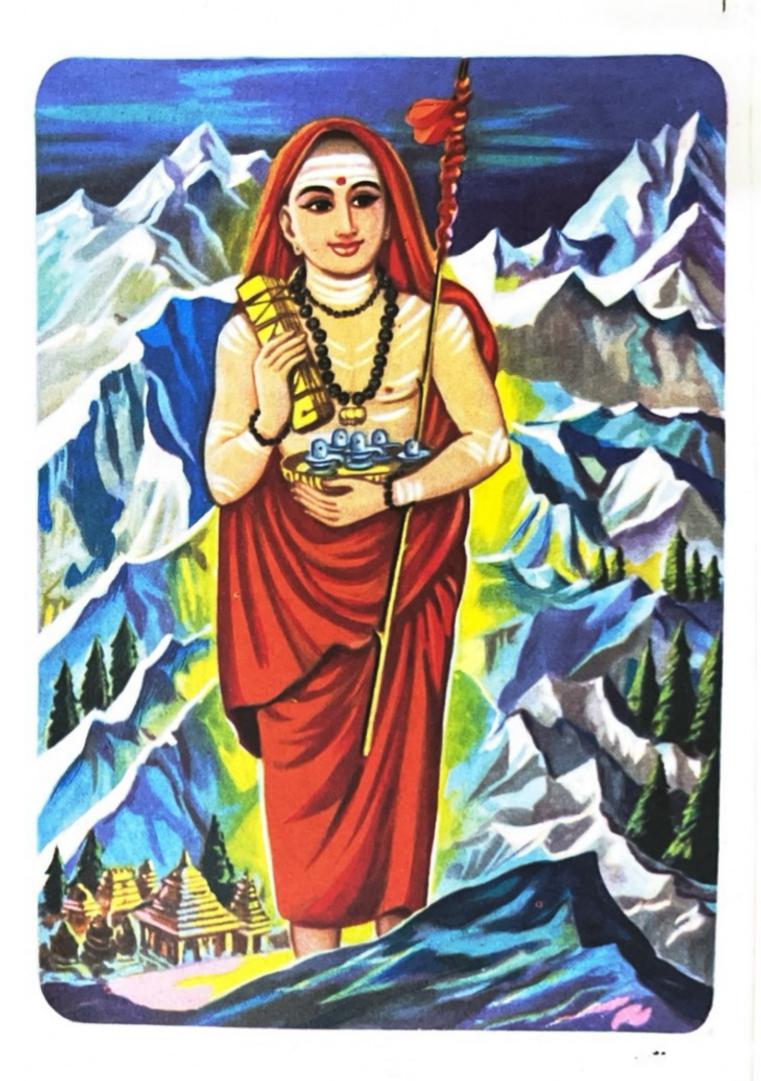
वहाँ से केदार नाथ गये । वहाँ मुक्ति लिंग की स्थापना की । वहाँ से गंगा नदी के किनारे गाँव और शहरों में घूम घूम कर अद्वैत सिद्धान्त का प्रचार किया । दूसरे मतवालों से वाद विवाद करके उनको जीत कर अद्वैत की स्थापना की । एवं प्रचार करते करते उत्तर से दक्षिण भारत आये और चिदम्बर क्षेत्र पहुँचे । वहाँ मोक्ष लिंग की प्रतिष्ठा की । वहाँ से शृंग गिरि जाकर शृंगागिरि में भोग लिंग की प्रतिष्ठा की बाद को भौतिक शरीर को छोडकर कैलास जाने के इरादे से मोक्षपुरी कांची पहुँचे। कांची पुर की सीमा पर वहाँ के राजा ने शंकराचार्य जी का स्वागत किया और आचार्य जी विश्वेश्वर के मंदिर में ठहरे । श्री कामाक्षी देवी के अनुग्रह से भरा पूरा है यह शहर।शंकराचार्य जी ने उस शहर को श्री चक्र के रूप में निर्माण करवाया। जिससे कामाक्षी का अनुग्रह सदा रहेगा ।
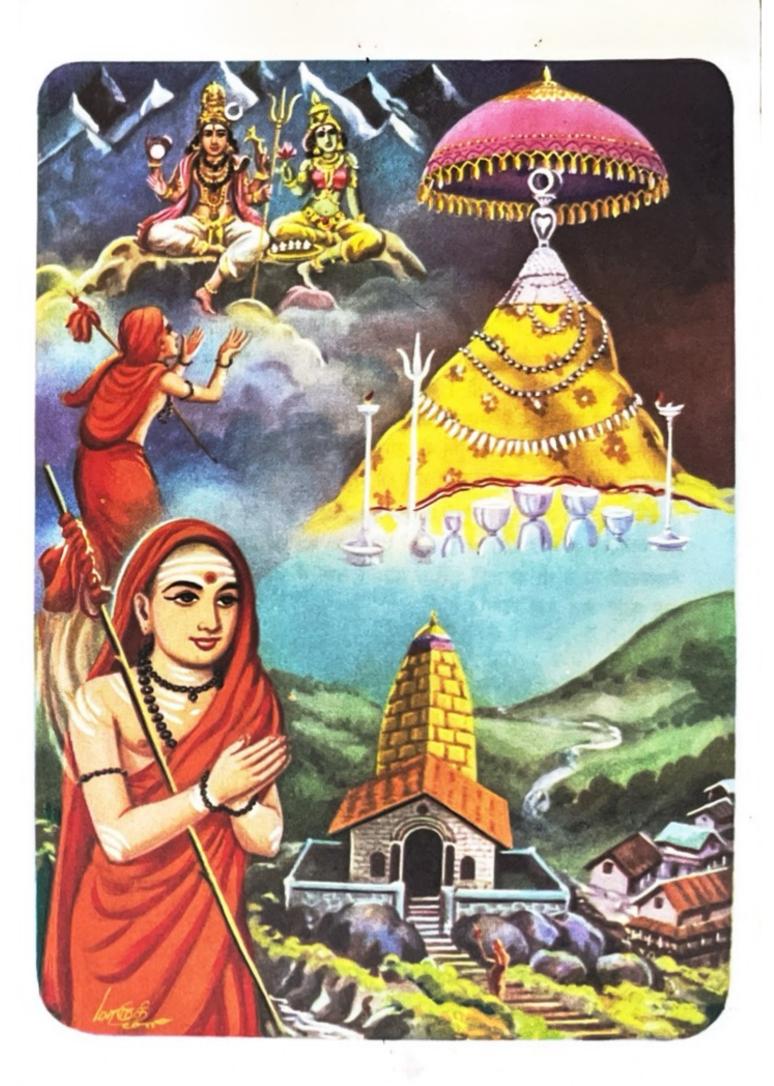
आचार्य जी के आदेश से राजा ने नगर के वीथ्यियों को चक्राकार के रूप में परिवर्तित किया। उसके बीच में कामाक्षी देवी का मंदिर कामकोष्ठ रह गया। पहले कामाक्षी देवी का रूप बहुत उग्र था। शंकराचार्य ने उस मूर्ति के सामने श्रीचक्र बनाकर देवी की शक्ति को उस चक्र में अवतारित किया। उसके बाद मूर्ति की उग्रता न रहकर सौम्यमूर्ति बन गयी। आज भी लोग इस सौम्यता का अनुभव कर रहे हैं।

शंकराचार्यजी को कामाक्षी देवी के प्रति गहरी भक्ति थी। उस मंदिर में कामकोटि पीठ नामक एक शक्ति पीठ है। अपने लिए एक मठ कांचीपुर में स्थापित करके शंकराचार्य जी ने श्री कामाक्षी देवी के पीठ के नाम से अपने मठ का भी नाम काम कोटि पीठ रख दिया।
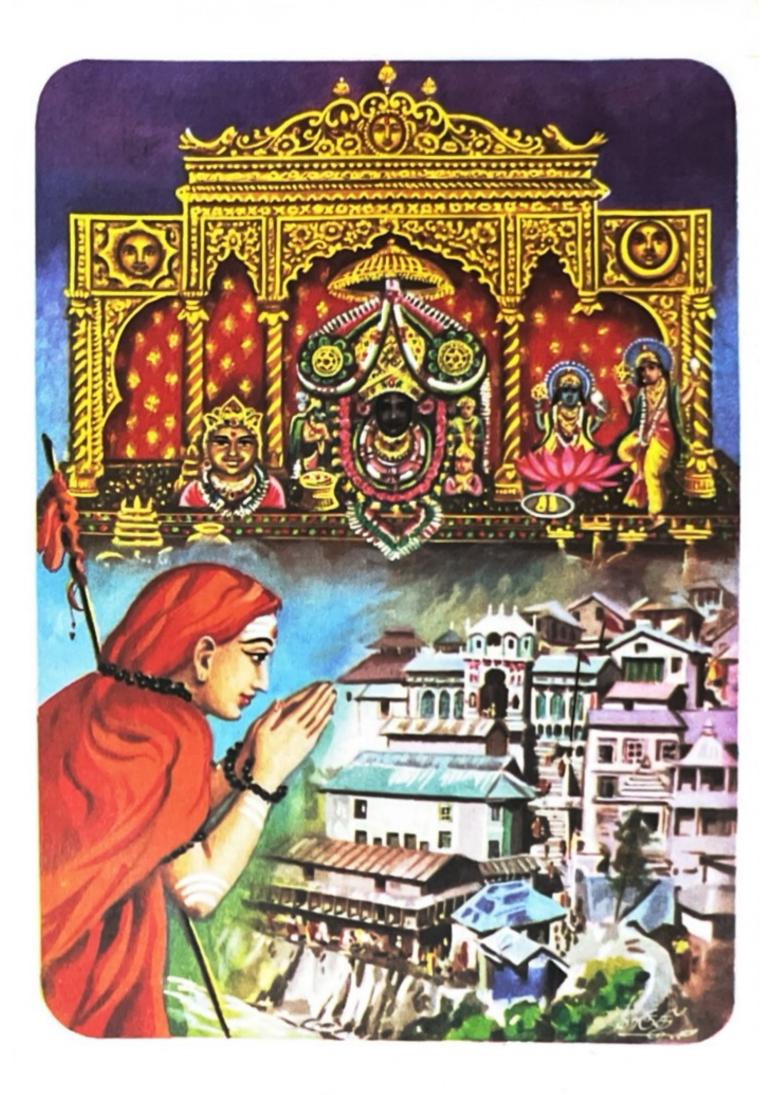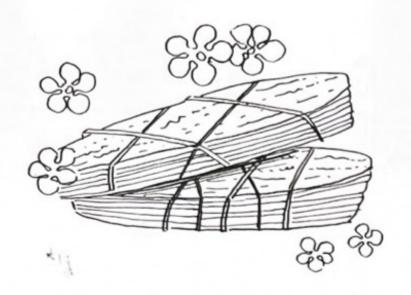
पाँच लिंगों में जो योगलिंग बाकी था उसे अपनी पूजा के लिए रख लिया। आज कामकोटि पीठाधीश श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामिजी की पूजा में जो स्फटिक लिंग है वही यह योग लिंग है जिसकी पूजा आदिशंकराचार्य जी ने स्वयं की थी ।

आदिशंकराचार्य जी ने ज्ञानमार्ग का प्रचार और प्रसार करके कामाक्षी देवी की उपासना भी करते हुए काम कोटि पीठ में रहे । वेदों में कई देवताओं की उपासना बताई गयी है ।
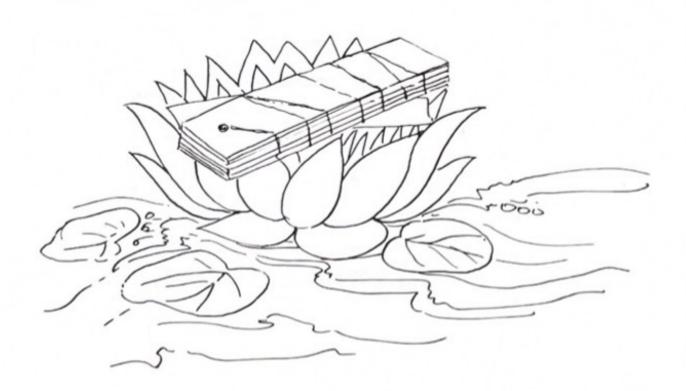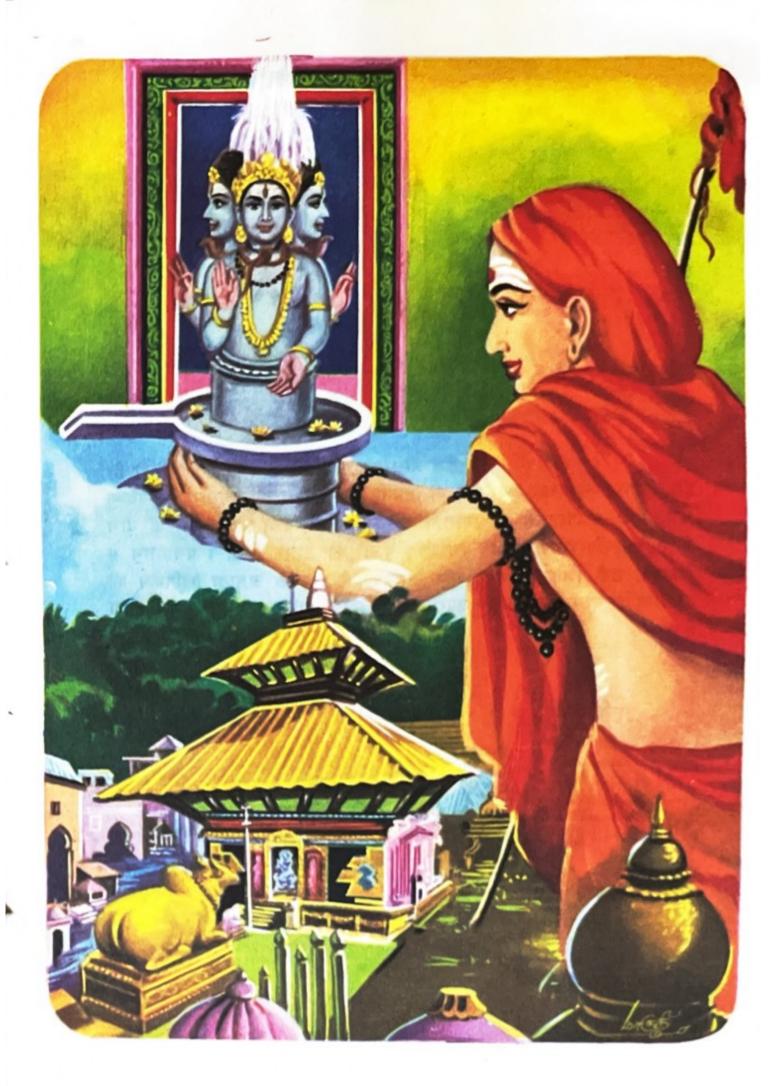
असल में उनमें ऊँच नीच का भाव नहीं है, सभी देव एक ही ,है। इस सिद्धान्त का प्रचार कर फिर भी अपनी अपनी रुचि के अनुसार शिव-विष्णु आदि विभिन्न देवताओं की उपासना का समर्थन भी किया । देवताओं के बीच में भेदभाव मिटाने के लिए 'पंचायतन पूजा' का उद्धार किया । पंचायत्तन में गजपति, सूर्य, शिवजी, विष्णु और अम्बिका है । इनके अलावा कार्तिकेय की उपासना का भी समर्थन किया । उपरोक्त छे मूर्तियों की उपासना पद्धति अलग अलग है ।
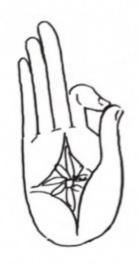
उन पद्धतियों से उपासना करनेवालों को 'षण्मतानुयायी कहते है । षण्मतों को वैदिक मार्ग से उपासना पद्धति के रचायिता श्री शंकराचार्य है । इसिलिए उनको 'षण्मत प्रतिष्ठापनाचार्य' कहते हैं । आखिर अद्वैत की स्थापना करके भौतिक शरीर को छोडने का निश्चय किया । इसलिए कांचीपुर में सर्वज्ञ पीठ की स्थापना की।
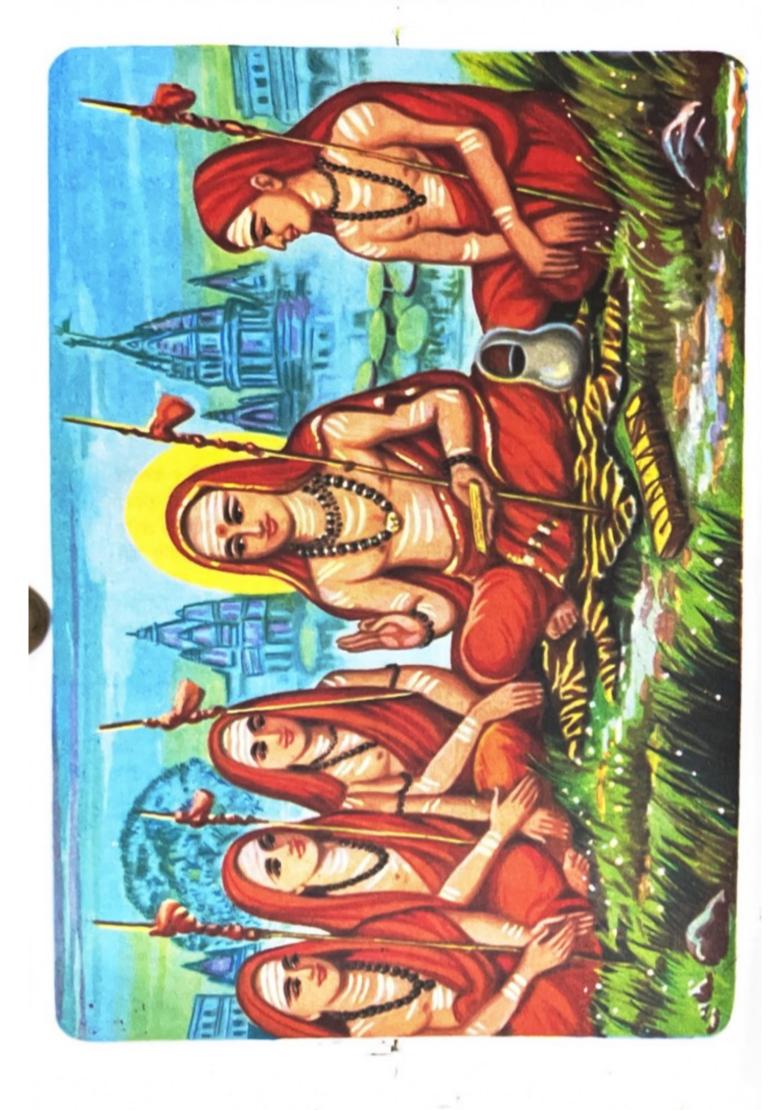
वहाँ एक विराट सभा हुई। उस सभा में षण्मत के अनुयायी और बौद्ध-जैन आदि विधर्मी विद्वान लोग उपस्थित थे। उनमें एक सात साल का छोटा बालक भी था। उसने लगातार तीन दिन तक आचार्यजी से वाद विवाद किया। प्रश्नों पर प्रश्न किया करता था। आखिर आचार्य जी की जीत हुई। उस बाल की तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशंसा करते हुए श्री शंकराचार्य जी ने उसको भी संन्याश्रम देकर सर्वज्ञात्म मुनि के नाम से पुकारा। उसी को अपने पीठ का प्रथम शिष्य नियुक्त किया। इस तरह उस सभा में उपस्थित सभी पण्डितों को जीत कर अद्वैत की स्थापना करके उस सर्वज्ञा पीठ में साक्षात ज्ञानमूर्ति बनकर रहे। उस समय बडे बडे सम्राट भी आचार्य जी को चामर लगाने लगे। पामर से लेकर पंडित, सम्राट और सन्यासी भी भगवत पाद शंकर जी के पैरों पडे और अपने को कृतार्थ समझा। उस समय एक ऊँची आवाज निकली 'जय जय शंकर'।

वैदिक मार्ग की इस तरह स्थापना की जिसे दूसरे लोग नहीं हिला भी सके। अद्वैत ज्ञान ही पारमार्थिक सत्य है। इस बात को संसार को अच्छी तरह समझा दिया। बहत्तर अवैदिक मतों को जड से उरवाड़ फेंक दिया। अव तार का उद्देश्य पूरा हुआ। बत्तीस (32) साल की उम्र की अवधि में अकेला ऐसी साधनाऐं की जिनकी कल्पना तक कोई दूसरे नहीं कर सकते। कामाक्षी देवी के परिपूर्ण अनुग्रह के पात्र थे शंकराचार्य जी।

धरती पर अवतरित होने का काम पूरा हुआ। उसके बाद परमात्मा में लीन होने की इच्छा हुई। इसिलिए श्री कामाक्षी मूर्ति के सामने त्रिपुर सुंदरी वेदपादस्तव नामक एक स्तोत्र किया। स्तोत्र के पूरा होते होते उसका जीवस्व रूप पराशक्ति के सर्वव्यापक आत्मा में विलीन हुआ। इस तरह जीव ब्रह्म ऐक्य रूप मोक्ष की स्थापना अपने ही आदर्श जीवन से की।

आज भी श्री कामाक्षी देवी के मंदिर में श्री शंकराचार्य जी की मूर्ति है। उनकी समाधि श्री काञ्ची कामाक्षी देवी मंदिर में, मूर्ति के पिछले भाग में विराजमान है।

आदि शंकराचार्य जी की पूजित त्रिपुरसुंदरी समेत चन्द्र मौलीश्वर की पूजा करनेवाले (उपासक) जगद्गुरु श्री कांची परमाचार्य जी, जगद्गुरु श्री जयेन्द्र सरस्वती स्वामीजी और जगद्गुरु श्री शंकरविजयेन्द्र सरस्वती जी अपने अनुग्रह से लोगों का उद्धार करते रहते है।

Printed at : The Orient Color Crafts, Sivakasi.

Printed at : The Orient Color Crafts, Sivakasi.